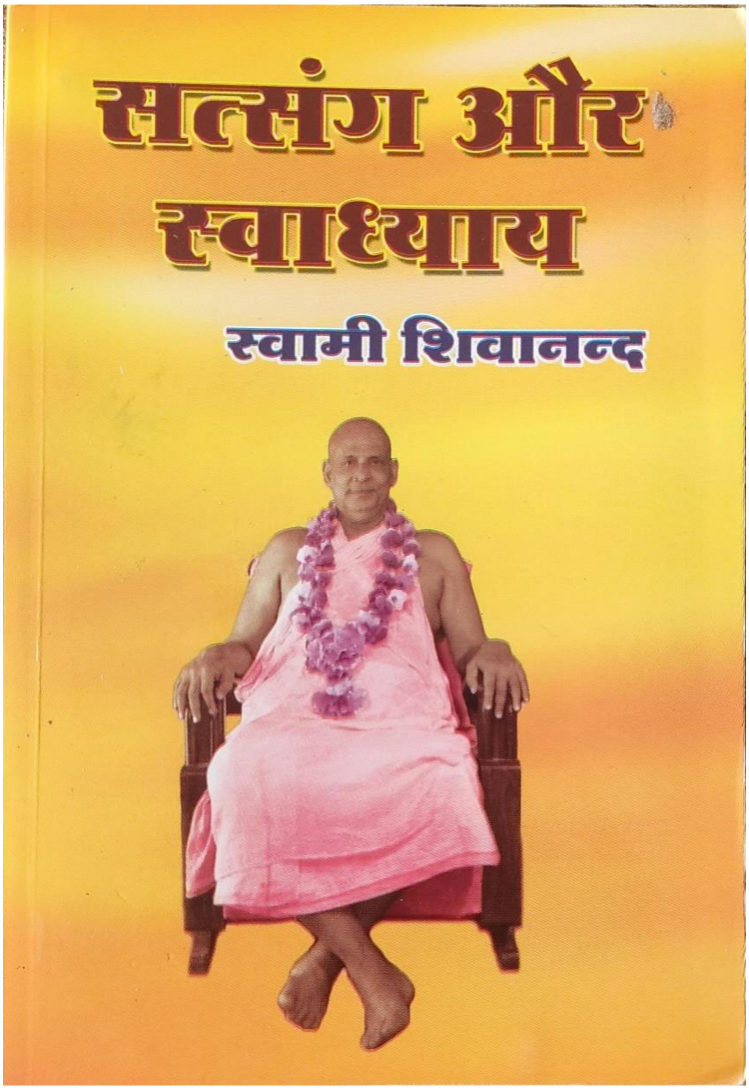

सत्संग और स्वाध्याय

सत्संग और स्वाध्याय की गरिमा, महत्ता तथा जीवन-निर्माण की क्षमता

लेखक श्री

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादक

श्री राजेश्वर नारायण सिनहा

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९ १९२

जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम हिन्दी संस्करण : १९६६

द्वितीय हिन्दी संस्करण :१९९९

तृतीय हिन्दी संस्करण २००१

चतुर्थ हिन्दी संस्करण : २०१८

(५०० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

HS 289

PRICE: 60/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पिन २४९ १९२' में मुद्रित ।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

प्रकाशकीय वक्तव्य

महाप्रभु श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने पावन सत्संग और स्वाध्याय पर विभिन्न स्थानों पर जो-कुछ विचार प्रकट किये हैं, उनका ही संकलन इस पुस्तक में प्रकाशित किया गया है।

इस पुस्तक के परिशिष्ट में उक्त विषय पर विशेष प्रकाश डाला गया है। उसमें श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज ने गुरु और सन्त की संगति के सूक्ष्म तत्त्व का विशद विश्लेषण किया है तथा किस परिस्थिति में साधक सत्संग से अधिक लाभ उठा सकता है, यह भी स्पष्ट रूप से दर्शाया है।

यह विषय कुछ गूढ़-सा है, किन्तु सभी आध्यात्मिक साधकों के लिए आवश्यक है। हमें पूर्ण आशा है कि इन पृष्ठों से अनेक लोगों की जीवन-पुस्तक में सुन्दर नये अध्याय का श्रीगणेश होगा।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

अनुवादक के दो शब्द

बात सन् १९२२ की है। एक बंगाली मित्र ने मुझे बंगला में प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द जी महाराज द्वारा लिखित 'राजयोग' ग्रन्थ दिया। उसे पढ़ तो गया, ग्रन्थ से प्रेम भी थोड़ा-बहुत हो गया, पर समझ कुछ भी नहीं सका।

उसके बाद वर्षों बीत गये, कोई सहायक नहीं मिला। प्रभु-कृपा हुई नहीं। इधर पाँच-सात वर्ष पूर्व 'योग-वेदान्त' पत्रिका देखने को मिली, तब महाप्रभु स्वामी शिवानन्द जी के पावन चरणों में श्रद्धा उत्पन्न हुई, पर सत्संग कहाँ मिला! वैसा भाग्य ही नहीं था। जब भी निराश होता, निशाकाल में उनसे प्रार्थना करता- 'सन्मार्ग बताइए।' वे स्पष्ट आदेश- सान्त्वना देते- 'निराश मत होओ ! साधना-आराधना का क्रम सतत जारी रखो।'

उनके सद्ग्रन्थ 'राजयोग', 'मन और उसका रहस्य' आदि अनेक बार पढ़ गया, उनकी कुछ चित्ताकर्षक पंक्तियाँ हृदयंगम हुईं और मन-ही-मन में दोहराता रहा। तभी एक निशा में आलोक मिला- 'क्यों नहीं यथाशक्ति परम श्रद्धेय सन्त के कुछ एक सद्ग्रन्थों का हिन्दी रूपान्तरण किया जाये।'

भाषा आदि का ज्ञान है नहीं। अज्ञानी हूँ, अन्धकार में भटक रहा हूँ। इस 'सत्संग और स्वाध्याय' सद्ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर करते समय मुझे जो आनन्द मिला है, अवर्णनीय है। मूक हूँ।

हिन्दी रूपान्तर में जो दोष हैं, होंगे ही, वे मेरी अज्ञानतावश हैं; जो उत्कृष्ट अभिनव गरिमा, आलोक है, उनके लिए श्री श्री ग्रन्थकार के पावन पाद-पद्म में साश्रु नतमस्तक ।

-राजेश्वर नारायण सिनहा

सत्संग-महिमा

सत्संगत्वे निःसंगत्वं निःसंगत्वे निर्मोहत्वम् ।

निर्मोहत्वे निश्चलचित्तं निश्चलचित्ते जीवन्मुक्तिः।।

श्रेष्ठ महात्माओं की सत्संगति से मनुष्य निःस्पृह बन जाता है। वह वैराग्य प्राप्त करता है। वह सांसारिक मनुष्यों की संगति पसन्द नहीं करता। तब वह निर्मोहत्व की स्थिति उपलब्ध करता है। वह मोह-रहित हो जाता है। तब उसका मन स्थिर तथा एकाग्र हो कर निज-स्वरूप में निवास करता है और तब वह मोक्ष को प्राप्त करता है। -शंकराचार्य

कस्तरति कस्तरति मायाम् ?
यः संगांस्त्यजति यो महानुभावं सेवते, निर्ममो भवति ।

कौन तरता है? दुस्तर माया से कौन तरता है? जो सब संगों का परित्याग करता है, जो महानुभावों की सेवा करता है और जो ममता-रहित होता है।

महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।

महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ।

उस भगवान् की कृपा से ही महापुरुषों का संग भी मिलता है।

-नारद-भक्ति-सूत्र

बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

सन्तों की संगति के बिना विवेक-वैराग्य उत्पन्न नहीं होता और यह पावन सत्संग प्रभु राम की कृपा बिना उपलब्ध नहीं होता।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
साधु-सन्तों का पावन सत्संग प्राप्त कर अपावन मानव भी पावन बन जाता है।

सतसंगत मुद मंगल मूला ।

सत्संग परमानन्द का मूल ही है।

-रामचरितमानस

सन्तों से ज्ञान प्राप्त कीजिए। वे ही आपके त्राता है। उनके उपदेशों के अनुसार आचरण कीजिए। वे आपकी सहायता करेंगे, मार्ग-दर्शन देंगे और आपको आपके निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचा देंगे।

* * *

अपने वास्तविक आनन्द निकेतन की ओर चलते चलो। संसार के मरुस्थल में काफी भ्रमण कर चुके । अब सन्त-रूपी मरुद्यानों में विश्राम करो। उनकी शिक्षाओं का पालन करो और अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाओ।

* * *

सत्संग ही जीवन-नौका है। विवेक दिशासूचक मार्गदर्शक यन्त्र है। वैराग्य ही आश्रय है। हे आत्म-सारथि ! इस संसार सागर में अपने जीवन-पोत को निर्भयतापूर्वक चलाओ और उस पार अमर जीवन के तट पर पहुँच जाओ।

-स्वामी शिवानन्द

विषय-सूची

प्रकाशकीय वक्तव्य 2

अनुवादक के दो शब्द........ 3

सत्संग-महिमा 3

१. सत्संग का अर्थ 8

एकमात्र भगवत्कृपा से सत्संग सम्भव 9

प्रभु तथा उनके भक्तों के सम्बन्ध पर प्रकाश........ 9

२. सत्संग की महिमा........ 11

सत्संग से क्रमशः प्रभु-दर्शन........ 12

जो स्वयं आत्म-चिन्तन नहीं कर सकते 12

३. सत्संग भवन - एक तात्कालिक माँग........ 14

सर्वत्र सत्संग-भवन का निर्माण हो........ 14

सत्संग से वास्तविक जीवन के सिद्धान्त सीखें........ 15

व्यक्तिगत और सामूहिक साधना 16

४. गृहस्थ और सत्संग........ 16

साधना और सत्संग से आत्म-साक्षात्कार 17

सांसारिकता से सत्संग ही रक्षा करता है........ 17

सच्चा सत्संग-भवन आपके हृदय में 18

५. महात्मा कौन है?........ 19

महात्माओं की पहचान में भूल 19
सच्चे धर्म का प्रारम्भ कहाँ से होता है ?........ 20
आध्यात्मिकता का मापदण्ड सिद्धि नहीं 21
धर्मग्रन्थों को रट लेना योग नहीं 21
तितिक्षा मात्र से कोई तपस्वी नहीं बनता 22
तब सच्चा महात्मा कौन है ?........ 22
सत्संग-प्राप्ति की समस्या 23
संन्यासियों के प्रति व्यवहार........ 24
६. कुसंगति के हानिकर प्रभाव 25
कुसंग क्या है ? 25
कपटी मित्र........ 26
७. सत्संग का संचालन-संन्यासियों के प्रति 26
समय की गति 26
सुखद जीवन का प्रलोभन........ 27
क्या यही सत्संग है? 28
खीर-पराँठा-पक्षी 28
८. प्रेरणादायी कथाएँ 29
ऋषि विश्वामित्र तथा वसिष्ठ 30
सन्त हरिदास तथा पतित नारी 31
अपने पाँवों से मेरी कमर दबाओ 31
९. सत्संग और स्वाध्याय-सम्बन्धी विविध पद........ 33
महात्माओं के दर्शन का फल........ 33
सत्संग से न चूकिए 33
साधुओं के सम्बन्ध में निर्णय करना एक भूलच........ 33
साधु कौन है ? 34
नकली सन्त 34
नकली संन्यासी........ 35
संग-दोष........ 35
कुसंगति का दुष्प्रभाव........ 35
धर्मग्रन्थों से सब-कुछ सुलभ........ 36
वेद गुरु के समान हैं,........ 37
१०. साधु-संन्यासी तथा सामाजिक पुनरुत्थान 37
साधुओं का संगठन........ 38
संन्यासियों के लिए कर्तव्य........ 39

कृतसंन्यासी तथा समाज-सेवा 40
११. चयनिका 41
सत्संग क्या है ? 41
ईश्वर और सन्त 42
सन्तों की महिमा 42
सत्संग के लाभ 43
सत्संग से परिवर्तन 44
सत्संग से लाभ प्राप्त करने की विधि 45
सन्तों की सेवा 46
सन्तों के जीवन-चरित्र 47
१२. सत्संग के माहात्म्य पर हिन्दू-धर्मग्रन्थ 48
योगवासिष्ठ 48
श्रीमद्भागवत 49
१३. सर्व देव-ऋषि-भक्त-कीर्तन-माला 50
सार्वजनिक कीर्तन 50
प्राचीन ऋषिगण 51
अतीत के सन्तगण 51
भक्तगण 53
चिरंजीवि 53
ऐतिहासिक महापुरुष 53
महिला सन्त 54
हिन्दू देवता 54
हिन्दू देवियाँ 55
१४. स्वाध्याय 56
दैनिक स्वाध्याय के लिए सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ 56
मन का धोखा 57
स्वाध्याय से लाभ 57
परिशिष्ट 58
१. सत्संग तथा गुरु-भक्ति का महत्त्व 58
महात्मा के साथ सत्संग तथा गुरुदेव के साथ सत्संग 58
गुण-ग्राहकता से ही सत्संग में लाभ 59
गुरु-शिष्य के सम्बन्ध का आधार 59
उचित दृष्टिकोण का महत्त्व 60
युधिष्ठिर और दुर्योधन का ऐतिहासिक उदाहरण 61

दोष-दृष्टि का सदुपयोग और दुरुपयोग 62
अहं और उसका विनाश 63
एक दृष्टान्त..... 65
अहं के त्याग से ही सत्संग की सफलता 66
२. स्वाध्याय की आवश्यकता..... 67
सतत प्रकाश की आवश्यकता..... 67
मन में अपने आदर्श को बनाये रखने के लिए धर्मग्रन्थों का नित्य स्वाध्याय आवश्यक..... 68
सदा विद्यार्थी बने रहो..... 68
स्वाध्याय द्वारा स्खलन से बचाव 69
सत्संग और स्वाध्याय-उभय रक्षक 69
पुनरावृत्ति से अन्तःशक्ति की संवृद्धि 69
श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती 70

१. सत्संग का अर्थ

'सत्संग' शब्द 'सत्' और 'संग' इन दो शब्दों के योग से बना है। 'सत्' का अर्थ है परम सत्ता, जो ब्रह्म है। 'सत्' ब्रह्म का अपरिहार्य स्वभाव है। यह सभी परिवर्तनशील वस्तुओं में अक्षुण्ण रहता है। एकमात्र यह सत् ही इस नामरूपात्मक जगत् को धारण करता है।

वही 'सत्' सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् आदि औपलाक्षणिक गुणों से सम्बद्ध हो कर ईश्वर या परमात्मा कहलाता है। संक्षेप में 'सत्' से ईश्वर और ब्रह्म दोनों का बोध होता है; क्योंकि अन्ततः दोनों एक ही हैं और एक ही सत्य के अभिव्यंजक हैं।

'संग' का शब्दार्थ है संगति या मेल। सदा प्रभु की संगति में रहना या ब्रह्म में स्थित रहना-यह हुआ 'सत्संग' का शाब्दिक अर्थ। परन्तु जब तक अविद्या रहती है, तब तक ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति नहीं हो सकती। ज्ञान से अविद्या का नाश होने पर 'सत्' स्वयं प्रकट हो जाता है। यही सर्वोच्च सत्संग है।

दूसरी सम्भावना यह है कि हम अपनी अव्यभिचारिणी भक्ति से प्रभु को प्रसन्न करें जिससे वे हमारी भावना के अनुसार सौम्य रूप धारण कर वैसे ही हमारे साथ क्रीड़ा करें जैसे गोपिकाओं के साथ की थी। परन्तु इस आनन्दमयी स्थिति की प्राप्ति का साधन भी सत्संग ही कहलाता है; क्योंकि साधन साध्य से भिन्न न होने के कारण साध्य के नाम से अभिहित होता है।

ज्ञानियों की संगति से ही (निर्गुण अथवा सगुण) ब्रह्म का ज्ञान होता है, अतः उसे भी सत्संग ही कहते हैं। इस सन्दर्भ में सत्संग का अर्थ है सत्पुरुषों की संगति। सत्पुरुष वे हैं जिन्होंने या तो 'सत्' का साक्षात्कार कर लिया है या उसके साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील हैं। जिस व्यक्ति ने अहंभाव, लोभ, काम-वासना आदि का त्याग कर दिया है, वह सत्पुरुष है। जिन लोगों ने समदृष्टि, मन का सन्तुलन तथा प्रभु में अव्यभिचारिणी भक्ति प्राप्त की है, वे सत्पुरुष हैं। जो लोग शान्ति, आनन्द, सन्तोष, आर्जव, निर्भयता, विनम्रता, ओजपूर्ण वाणी तथा दिव्य आभापूर्ण व्यक्तित्व से सम्पन्न हैं, वे सत्पुरुष हैं।

एकमात्र भगवत्कृपा से सत्संग सम्भव

किसी सत्पुरुष के सम्पर्क में आना बड़ा ही कठिन है और उससे भी कठिन है सत्पुरुष को पहचानना। जागतिक संस्कारों से युक्त व्यक्ति अपने ही पैमाने से सन्त को मापना चाहते हैं और उस पैमाने के अनुकूल न पा कर उसे झूठा सन्त मान कर त्याग देते हैं, जिसके परिणाम-स्वरूप वे सन्त-सम्पर्क के तात्कालिक लाभ से वंचित रह जाते हैं। परन्तु फिर भी सत्संग का अमिट प्रभाव सम्बन्धित व्यक्ति पर पड़ता ही है, उसे चाहे वह शीघ्र अनुभव करे अथवा कुछ समय के बाद। भक्ति-सूत्र में भगवान् नारद कहते हैं-"महात्माओं का संग दुर्लभ, अगम्य और अचूक है।"

महापुरुषों की संगति प्राप्त करना दुष्कर है। महापुरुषों के समाज में किस प्रकार तथा कब कोई मनुष्य प्रवेश पा सकेगा, यह कहना सम्भव नहीं; परन्तु यदि महापुरुषों की संगति एक बार भी प्राप्त हो गयी, तो उसका प्रभाव चिरस्थायी रहता है। भगवत्प्रेम मुख्यतः सत्पुरुषों की कृपा अथवा प्रभु की करुणा के संस्पर्श से ही प्राप्त होता है। इस भाँति सत्संग भी प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होता है; क्योंकि भक्त और भगवान् में कोई अन्तर नहीं है।

भगवान् और भागवत में कोई अन्तर नहीं होता है। दोनों अभिन्न हैं। भागवत स्वयं भगवान् है। श्रुति की घोषणा है कि 'ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है।' ब्रह्म के समान ही सन्तों की महिमा अपार तथा अनन्त है।

प्रभु तथा उनके भक्तों के सम्बन्ध पर प्रकाश

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं: "यद्यपि मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परन्तु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं, वे मेरे में और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ (गीता : ९-२९)।" यद्यपि सूर्य की किरणें सभी पर समान रूप से पड़ती हैं, पर हीरा अन्य सभी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक चमकता है। यद्यपि एक व्यक्ति के पास

उसके मकान में सैकड़ों कमरे होंगे; किन्तु वह अपने निजी सुसज्जित कमरे में ही आनन्द प्राप्त करता है। उसी प्रकार यद्यपि प्रभु सबके हैं, किन्तु वे सन्त के उस हृदय में अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं, जो पवित्रता से उज्ज्वल हो गया है तथा जो करुणा, दया, आत्म-संयम, समदृष्टि तथा ज्ञान के बहुमूल्य रत्नों से जड़ित है।

भगवान् और उनके भक्त का सम्बन्ध तीन प्रकार का बतलाया गया है। प्रथमतः दोनों अभिन्न हैं, क्योंकि सन्त का ईश्वर से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है। हरि-इच्छा ही उनके जन की इच्छा है। सूर्य की ज्योति वास्तविक सूर्य में मिल गयी है। नमक का पुतला सागर में मिल कर तद्रूप हो गया है। ओस की बूँदें विशाल सागर में प्रवेश कर गयी हैं। जीव शिव में लीन हो गया है। जब अहं जाता रहा, तो हरि और हरि के जन में कोई अन्तर नहीं रहा।

दूसरे दृष्टिकोण से देखने पर सन्त से ईश महान् हैं; क्योंकि सन्त तो केवल पथ हैं। मानव सन्त के दर्शन से ही सन्तोष नहीं पाता, अतः पूछता है—"महाराज ! भगवत्प्राप्ति का मार्ग कृपा कर बतायें। परम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के लिए मैं क्या करूँ ?" इससे यह प्रमाणित होता है कि सन्त से भगवान् श्रेष्ठ हैं; परन्तु यह सापेक्षिक दृष्टिकोण है। बन्धन में पड़ा मानव सन्त के सम्पर्क में आ सकता है; किन्तु उसके लिए सन्त-चेतना का, जो कि ईश से अभिन्न है, अनुभव करना अति-दुष्कर है। जब तक उसे इस चेतना की अनुभूति नहीं होती, तब तक सन्त उसके लिए किसी लक्ष्य के पथ मात्र ही हैं; पर वास्तविक बात तो यह है कि सन्त लक्ष्य और पथ दोनों ही हैं।

जहाँ तक सन्त लक्ष्य और पथ दोनों ही हैं, वह ईश से भी महान् समझा जाता है। सन्त तुलसीदास का कथन है- "मेरी दृढ़ आस्था है कि श्रीराम का भक्त उनसे भी महान् है। सभी सन्त एक स्वर से यही उद्घोषित करते हैं।"

यद्यपि प्रभु सर्वव्यापक हैं; किन्तु गुरु-कृपा के बिना उनका साक्षात्कार नहीं हो सकता है। सन्त अथवा गुरु ही इसके एकमात्र मार्ग हैं। संसार से मुक्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

सन्त ही ईश्वर के सजीव प्रतीक हैं। सन्त के दर्शन, उनका चिन्तन, स्मरण, पाद-संस्पर्श, उनके संग वार्तालाप आदि से व्यक्ति में प्रभु-कृपा की अजस्र धारा प्रवाहित होने लगती है, जिससे वह आध्यात्मिक ज्ञान के चरम शिखर पर शीघ्र आरूढ़ हो जाता है।

तुलसीदास जी ने सत्संग की महिमा का बड़े ही ओजस्वी शब्दों में वर्णन किया है:

"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ।।"

अर्थात् तराजू के एक पलड़े पर स्वर्ग तथा अपवर्ग के सारे सुख रखे जायें तथा दूसरे पलड़े पर केवल क्षण-भर का सत्संग हो, तो सत्संग का पलड़ा ही भारी होगा।

संसार-सागर को सन्तरण करने के लिए सत्संग के अतिरिक्त अन्य कोई नौका नहीं है। वह बड़ा ही भाग्यशाली है जिसे सत्पुरुष का सम्पर्क प्राप्त हो चुका है। उससे भी अधिक भाग्यशाली वह है जिसे सन्त-चरणों में अटूट श्रद्धा है और सर्वाधिक भाग्यवान् तो वह है जिसने सन्त-चेतना के साथ तादात्म्य साध लिया है।

यदि किसी के लिए सन्त-सम्पर्क सम्भव न हो तो उसे उपनिषद्, गीता, योगवासिष्ठ, रामायण, भागवत आदि सद्ग्रन्थों से सम्पर्क रखने का प्रयत्न करना चाहिए। उसे तीर्थवास करना चाहिए और वहाँ प्रभु-महिमा के श्रवण और कथन में संलग्न रहना चाहिए। यह भी उसके लिए सत्संग ही है। जिस किसी कार्य से हृदय पावन बनने में सहायता मिले, वह सभी सत्संग ही माने जाने चाहिए।

२. सत्संग की महिमा

सत्संग, ज्ञानियों, सन्तों, योगियों, संन्यासियों तथा महात्माओं के साथ संगति तथा उनका सुयश और महिमा अवर्णनीय है। जागतिक लोगों के पुराने अपावन संस्कारों को विनष्ट करने के लिए क्षण-भर की सत्संगति पर्याप्त है। सिद्ध पुरुषों की सशक्त धारा, चित्ताकर्षक आभा तथा आध्यात्मिक कम्पन का सांसारिक मनुष्यों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। महात्माओं की सेवा से विषयी मनुष्यों का मन शीघ्र ही पावन हो जाता है। सत्संग मन को महानता के शिखर पर पहुँचा देता है। जिस प्रकार दियासलाई की एक काठी रुई की विशाल गाँठ को कुछ क्षणों में ही भस्मसात् कर देती है, उसी प्रकार सन्तों की संगति विषय-विकार और अपावन संस्कार को अल्प काल में ही नष्ट कर देती है। तीव्र वैराग्य तथा मोक्ष की ज्वलन्त आकांक्षा पैदा करने का एकमात्र मार्ग सत्संग, केवल सत्संग है।

पावन सन्तों की संगति ज्ञान और भक्ति उत्पन्न करने को पर्याप्त है। विद्या उनमें ही उदित होती है जिनके दोष सत्संग के बल से नष्ट हो गये हैं। विद्या उत्पन्न करने तथा सभी दोषों को शेष करने की स्वतन्त्र शक्ति सत्संगति में है।

जो पापों से अपावन बन गये हैं, उनके हृदय सन्त पुरुषों की प्राणदायिनी वाणी से पावन हो जाते हैं। वे ही प्रभु के पाद-पद्म में अन्ततः पहुँच पाते हैं। यह प्रमाणित करता है कि सन्त पुरुषों की वाणी में आत्म-दर्शन की शक्ति तथा प्रभु-पाद-पद्म में पहुँचाने की क्षमता है।

सत्संग से क्रमशः प्रभु-दर्शन

इसके लिए प्रथम कार्य है धार्मिक और सन्त पुरुषों की संगति तथा उनकी सेवा। ऐसी संगति और सेवा से स्वभाव की सिद्धि तथा परम प्रभु की प्राप्ति होती है। उसके बाद वैराग्य या इस संसार की सभी वस्तुओं के प्रति निवृत्ति पैदा होती है और दूसरे, ईश के लिए एकान्त इच्छा। यह है भक्ति। जब भक्ति परिपक्व हो जाती है, वह मानव प्रभु का प्रिय बन जाता है और इस प्रेम के कारण, प्रभु उसे अपना बना लेते हैं। तब प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं।

विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस का सत्संग ग्रहण किया था। ज्ञानदेव ने निवृत्तिनाथ का सत्संग पाया था। गोरखनाथ ने मत्स्येन्द्रनाथ का सत्संग पाया था। हर वस्तु में प्रभु के दर्शन, हर रूप में उनके रूप का अनुभव-इस भावना का सतत अभ्यास ही स्वतः महान् पावन सत्संग है। महात्माओं को शत-शत प्रणाम जो 'सत्संग' कराते हैं, वे भक्त भी धन्य हैं जो इस सत्संग में सम्मिलित होते हैं। संगति से तथा भक्तों के साथ वार्ता से भक्ति जाग्रत होती है। जिस प्रकार अग्नि से अग्नि प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार हृदय में भी हृदय से प्रेमाग्नि प्रज्वलित होती है। भगवान् श्रीकृष्ण का सद्वचन है- "ज्ञानी अपनी अगाध श्रद्धा से मेरी अर्चना करते हैं, उनका मन मुझमें लीन है, उनका जीवन मुझमें आप्लावित है, एक-दूसरे के प्रकाश से आलोकित, सतत केवल मेरा ही गुणानुवाद करने वाले वे मेरे प्रिय श्रद्धालु भक्त सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं।"

पूर्वी देशों में छात्रों को सन्त पुरुषों की संगति करने तथा उनके सद्वचन श्रवण करने का परामर्श दिया जाता है, ताकि उनमें भगवत्-प्रेम और आतुरता का आलोक प्रज्वलित हो। केवल सशक्त आत्मा ही एकान्त का रसास्वादन कर आत्म-विभोर हो सकता है। साधकों को जो सुअवसर मिले, उससे लाभ उठाना चाहिए, ताकि सत्संग से उनकी आकांक्षाएँ बलवती बनें।

जो स्वयं आत्म-चिन्तन नहीं कर सकते

इस विश्व में बहुत थोड़े लोग ऐसे होंगे, जो स्वयं सत्-चिन्तन कर सकते हों, जो सद्विचार कर सकते हों तथा सत्यान्वेषण में अपनी मेधा पर निर्भर करते हों। ये थोड़े लोग, वास्तव में अपने गुरु या शिक्षक स्वयं हैं तथा उन्हें किसी शिक्षक की आवश्यकता नहीं। उनका सत्संग सर्वनियन्ता का ध्यान ही है।

जो लोग स्वयं सही रूप में सोच नहीं सकते तथा अपनी भावना, विचार और कार्य पर निर्भर नहीं कर सकते, जो भ्रम और वासना के प्रवाह में बह जाते हैं, उनकी संख्या मानव-समाज में अधिक है। ऐसे लोगों को ज्ञानी तथा सद्गुरु की आवश्यकता है ताकि वे सन्मार्ग पर अपना जीवन चला सकें। उनका सत्संग उन गुरु या शिक्षकों की सेवा करना, उनके संसर्ग में निवास करना, प्रत्यक्ष निर्देश प्राप्त करना तथा उनके सदाचरण का अनुगमन करना है, जो ज्ञानी और पवित्र हैं।

सच्चे साधक ही सत्संग के वास्तविक महत्त्व को जान पाते हैं। सच्चा सत्संग जीवन-संग्राम का सामना करने, प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करने, अन्तर्निहित वासनाओं का उन्मूलन करने तथा मन को दिव्य सद्गुणों से आपूरित करने के लिए अन्तः आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करता है।

सत्संग बुराई को भलाई में बदल देता है। नियमित सत्संग से ईश्वर और धर्मग्रन्थों में श्रद्धा तथा भगवान् में अनुराग एवं भक्ति का शनैः-शनैः विकास होता है। महापुरुषों के संग से पापी के भी उद्धार की आशा की जा सकती है। सत्संग के प्रभाव से दुष्ट जगाई, मधाई तथा डाकू रत्नाकर सन्त बन गये।

सत्संग ही मनुष्य को पावनकारी तथा ज्ञानप्रदायक वस्तुओं में सर्वश्रेष्ठ है। सत्संग ही जीवन के सभी रोगों का एकमात्र निदान है। सत्संग से बढ़ कर प्रेरक, उन्नायक और सान्त्वनाप्रदायक अन्य कोई भी वस्तु नहीं है। सत्संग जीवन का रस है, विचारों का अमृत तथा जीवन का आनन्द है। परमानन्द की प्राप्ति के लिए सत्संग के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। कोई भी वस्तु इतनी महान् नहीं, इतनी आवश्यक नहीं, इतनी अपरिहार्य नहीं, इतनी आनन्ददायक नहीं, जितना कि सत्संग। एकमात्र यही मार्ग है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

३. सत्संग भवन - एक तात्कालिक माँग

सत्संग-भवन ही तात्कालिक आवश्यकता है। वहाँ बहुत से लोग एकत्रित हो सकते हैं। जब लोग एकत्रित हो कर प्रभु का नाम-स्मरण तथा कीर्तन करते हैं, तब महान् आध्यात्मिक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। सत्संग की यह महिमा है। यदि आप एक कमरे में बन्द रह कर नाम-जप और ध्यान करें, तो आपकी उतनी तीव्र प्रगति नहीं होगी; परन्तु यदि आप एक छोटा सत्संग-दल बनायें और सभी मिल कर साथ ही जप और ध्यान करें, तो आध्यात्मिक शक्ति जगेगी और सभी को उससे सहायता मिलेगी। आप तीव्र और आश्चर्यजनक प्रगति करेंगे। जब आप सत्संग में भाग लेते हैं, तो अपनी समस्त सांसारिक चिन्ताओं को भूल जाते हैं। उस समय आप सर्वथा नवीन वातावरण में रहते हैं।

आज के युग में सत्संग ही मनुष्य में दिव्य परिणति ला सकता है। मनुष्य के कानों में सद्विचार सदा गूँजते रहने चाहिए, तभी उसका हृदय परिवर्तित होगा।

आजकल व्यापार में इतनी बेईमानी घर कर गयी है कि सभी वस्तुओं में मिलावट पायी जाती है। खाद्य-सामग्री में मिलावट का बोलबाला है। मनुष्य स्वार्थी हो चला है, उसमें कर्तव्य की भावना रही नहीं। मृत्यु के समय आपका विवेक आपको चुभेगा। अभी या मृत्युकाल में या उसके अनन्तर कभी भी आपको मानसिक शान्ति नहीं मिलेगी। बेईमानी आपके विवेक का हनन करती है। यह आत्महत्या से भी खराब है। यह तो अपने को ही मारने के समान है। ईमानदार बनो। शुद्ध हृदय, स्वच्छ मानस, निर्विकार विवेक रखो। यदि धनहीन भी हो, तो प्रसन्न रहोगे। यदि ईमानदार हो, तो विश्व की समस्त सम्पदाएँ आपकी होंगी।

सर्वत्र सत्संग-भवन का निर्माण हो

वह व्यक्ति धनी नहीं जिसके पास बैंक में बहुत धन जमा है। धनी तो वह व्यक्ति है जिसका हृदय विशाल है। प्रत्येक सद्गुण करोड़ों रुपये से अधिक मूल्यवान् है। दानशील हृदय का विकास कीजिए। आप अपनी पत्नी और बच्चों के वस्त्र पर बहुत धन व्यय करते हैं। मन्दिर तथा सत्संग-भवन के निर्माण के लिए दान-रूप में पर्याप्त धन दीजिए। संसार के लिए यह आपकी विशेष देन होगी।

हर शहर और हर मोहल्ले में आपके दान से गीता भवन का निर्माण होना चाहिए। यह कार्य कितना आश्चर्यजनक होगा ! सर्वत्र ही सत्संग होगा और उन सत्संगों में लोग धार्मिक शिक्षा प्राप्त करेंगे। लोगों के जीवन में दिव्य परिवर्तन आयेगा और उसके परिणाम स्वरूप सारा समाज ही परिवर्तित हो जायेगा। उदात्त विचार और आदर्श लोगों के हृदय में घर कर जायेंगे। छल-कपट दूर होगा। धर्म का एकछत्र साम्राज्य होगा। सभी लोग 'सर्वभूतहिते रताः' होंगे; यह विश्व एक ही परिवार है, इस भावना से लोग सभी प्राणियों के कल्याण में संलग्न होंगे।

जिस प्रकार समस्त विश्व में एक ही सूर्य और एक ही चन्द्र प्रकाशमान् हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियों में एक ही चेतना, एक ही आत्मा विद्यमान है; परन्तु माया की शक्ति से सभी भिन्न दीख पड़ते हैं। मेहतर और मोची आपकी ही आत्मा हैं। माया के कारण ही आप ऐसा सोचते हैं कि यह मनुष्य नीच है और वह उच्च। वेदान्त एकता की घोषणा करता है। सब एक ही हैं। यह सत्य आपके समस्त शरीर में रम जाना चाहिए। यह सब सत्संग से ही सम्भव है।

इन उच्च आदर्शों का सतत श्रवण और मनन करना चाहिए। कुछ वेदान्तिक साधक कहते फिरते हैं कि 'तीनों काल में कोई विश्व नहीं है'; किन्तु यदि उनकी दाल में नमक कम हो अथवा दूध में चीनी कम डाली गयी हो, तो वे उत्तेजित हो उठते हैं। इस मौखिक वेदान्त से काम नहीं चलने का। आपको व्यावहारिक वेदान्ती बनना होगा और सतत सत्संग से ही आप व्यावहारिक वेदान्ती बन सकते हैं।

सत्संग से वास्तविक जीवन के सिद्धान्त सीखें

आपको सत्संग से सच्चे जीवन के सिद्धान्त को सीखना चाहिए। परहित जीवन ही सच्चा जीवन है। आप हीरे की अँगूठी और बनारसी साड़ी से अपने को सुसज्जित करती हैं। क्या हीरे की अँगूठी और बनारसी साड़ी में सौन्दर्य है? सेवा-भाव और दानशीलता ही यथार्थ हीरा है। आप सुन्दर वस्त्र धारण करके सैकड़ों बार शीशे में अपना मुख देखती हैं। क्या इनसे आप रूपवती बन जाती हैं? सच्चा सौन्दर्य तो अन्दर है। आपके अन्तरतम में अनन्त सौन्दर्य का निवास है :

"ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।"

आप अपना सारा समय इस शरीर को अलंकृत करने में ही व्यतीत करते हैं। प्रातः दाढ़ी बनाते हैं। शाम को आप पुनः दाढ़ी बनाते हैं। इस प्रकार आप अपने अमूल्य समय और जीवन का अपव्यय करते हैं। आप सत्संग के समय का सदुपयोग करना सीखें।

सबसे प्रेम करें। सबको गले लगायें। सबके प्रति सदय रहें। दलित भाइयों की सहायता करें। अपने लिए छह-सात कमीजें न रख कर एक कमीज किसी गरीब को दे दें। इससे ही आपका विकास होगा। इस भाँति ही आप सबमें व्याप्त एक आत्मा का साक्षात्कार कर सकेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति में सद्गुण देखने का प्रयत्न करें। दोष-दृष्टि का स्वभाव छोड़ दें। आपका कलुषित मन, निम्नकोटि का स्वभाव दूसरे व्यक्ति के सद्गुणों की उपेक्षा कर उसके केवल दोष ही देखता है। विवेक-दृष्टि का विकास करें। मानव-स्वभाव ही ऐसा है कि वह दूसरों के केवल दोष ही देखता है। जिनमें दोष नहीं है, उनमें भी उन दोषों को आरोपित कर बैठता है। सत्संग और स्वाध्याय से इस स्वभाव को दूर करना होगा। दूसरों में केवल गुण ही देखने के स्वभाव का विकास कीजिए। तभी आप सबके साथ मिल सकेंगे, सभी के गुणों को पहचान सकेंगे और आप किसी के प्रति घृणा नहीं कर सकेंगे। सत्संग द्वारा ही आप इस स्वभाव का विकास कर सकते हैं।

व्यक्तिगत और सामूहिक साधना

पाँच वर्ष के स्वाध्याय से आप जितनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकते हैं, वह केवल एक ही सत्संग से प्राप्त हो सकती है। आप सबने इसका अनुभव भी किया है। मैं आपको धोखा नहीं दे रहा हूँ। आप सभी इसका अनुभव कर रहे हैं : अपरोक्षानुभूति। यहाँ संकीर्तन करते समय आपको बाह्य जगत् का स्मरण नहीं रहता है। आप क्योंकर इस बाह्य जगत् को भूल जाते हैं; शरीर भाव से ऊपर उठ जाते हैं? इसका एकमात्र कारण है प्रभु का यह नाम-कीर्तन, यह सत्संग ।

सत्संग से ही आप जाग्रत रह सकते हैं। आप भाव-समाधि में यहाँ निमग्न हो जायेंगे। किन्तु यदि आप अपने कमरे में नाम-जप का प्रयत्न करें, तो आप एक दूसरे ही प्रकार की समाधि में प्रवेश करते हैं। वह है घोर निद्रा। एक व्यक्ति मन के नियन्त्रण तथा चित्तवृत्तियों के उन्मूलन का सरलतम उपाय जानना चाहता था। उसके गुरु ने कहा- "चावल और खट्टा दही भर-पेट खा लो। मुलायम और सुखदायक किसी अच्छे बिस्तर पर लेट जाओ। सिर और पैर के नीचे मोटा तकिया रख लो। खूब आराम से लेटो। गहरा श्वास लो। इस भाँति तुम मन से परे हो जाओगे।" यह है गहरी निद्रा। यदि आप अपने कमरे में बैठ कर नाम-जप और ध्यान का प्रयत्न करें, तो आप भी इसी स्थिति को प्राप्त होंगे। सत्संग में सम्मिलित होने पर आप निरन्तर जाग्रत रहते हैं और आप समस्त उपस्थित व्यक्तियों के आध्यात्मिक स्पन्दन से सहायता प्राप्त करते हैं।

४. गृहस्थ और सत्संग

यह संसार बड़ा ही रमणीय, मनमोहक और आकर्षक प्रतीत होता है। स्वादिष्ट पेय, रसीले फल, सुगन्धित पुष्प, मिष्टान्न और टॉफी, चाय तथा कॉफी, सुन्दरी स्त्रियाँ और मनोहर उद्यान- ये सब मन को बलात् अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। जिसमें विवेक और वैराग्य नहीं है, ऐसा मनुष्य सहज ही इनसे आकर्षित हो जाता है। वह माया में ही निवास करता है, सदा माया का ही चिन्तन करता है, विषय-वस्तुओं की ही सतत चर्चा करता है और अशुभ वासनाओं से आपूरित रहता है।

परन्तु एक क्षण के लिए इस संसार के वास्तविक स्वरूप का चिन्तन तो कीजिए। इन रमणीय वस्तुओं के साथ ही जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि का चक्र अहर्निश चालू है। सम्पत्ति का नाश, प्रियजनों की मृत्यु, अपमान और पराजय-इन्हें आप अपने जीवन में नित्यप्रति अनुभव करते हैं; फिर भी आप इन रमणीय पदार्थों के पीछे यह सोच कर पड़े रहते हैं कि इनसे आपको विशुद्ध आनन्द की प्राप्ति होगी, परन्तु बदले में आपको निराशा ही हाथ लगती है। आप शोक-सागर में निमग्न हो जाते हैं। आपने संसार का स्वरूप समझने में भूल की। यह संसार दुःख, शोक और मृत्यु का आगार है। आपको इस संसार में इन विषय-वस्तुओं से सच्ची शान्ति, सुख और आनन्द नहीं प्राप्त हो सकते। यदि ऐसी बात है, तो फिर आप उन्हें कहाँ प्राप्त कर सकेंगे ?

साधना और सत्संग से आत्म-साक्षात्कार

इस नामरूपात्मक जगत् के पीछे, इन अस्थिर विषय-पदार्थों के पीछे, इन विनाशशील दृश्यों के पीछे सच्चिदानन्द परब्रह्म है। स्वाध्याय, ध्यान, जप, कीर्तन और सत्संग के द्वारा आत्मानुभूति प्राप्त करें। इससे आप वासना-जाल से, मन की दासता से तथा जन्म-मृत्यु की श्रृंखला से मुक्त होंगे।

अविद्या, काम और कर्म ने ही आपको जन्म-मृत्यु के चक्र में बाँध रखा है। आप अपने स्वरूप को भूल गये हैं। आपको अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप का पता नहीं है और यही कारण है कि आप ऐसा सोचते हैं कि बाह्य विषय-वस्तुओं में ही सुख है। उनके लिए आपमें इच्छा जाग्रत होती है। आप उनको प्राप्त करने के लिए प्रयास करते हैं और परिणाम-स्वरूप कर्म का उदय होता है। कर्म से जन्म-मृत्यु का चक्र चलता है।

यदि आप आवागमन के चक्र से मुक्त होना चाहते हैं, तो अपने को अशुभ वासना से और अन्ततः अज्ञान से मुक्त बनाइए तथा विवेक, वैराग्य और मन के सन्तुलन का विकास कीजिए। महर्षि पतंजलि के अष्टांगयोग, देवर्षि नारद के भक्तियोग, भगवान् शंकराचार्य के ज्ञानयोग, भगवान् श्रीकृष्ण के कर्मयोग अथवा आधुनिक युग के सर्वथा अनुकूल समन्वययोग का अभ्यास कीजिए। आप तब आवागमन के चक्र से मुक्त हो जायेंगे। आप शाश्वत आनन्द प्राप्त करेंगे। यही जीवन का चरम उद्देश्य है। यही आपका धर्म है। आपको मानव-जन्म इसलिए मिला है कि आप इस उद्देश्य को इसी जीवन में, यहाँ और अभी प्राप्त कर लें। यदि आप अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं हैं, तो आप अपनी जीवन-रूपी इस अमूल्य भेंट की उपेक्षा कर रहे हैं।

सांसारिकता से सत्संग ही रक्षा करता है

अपना लक्ष्य न भूलें। अपने लक्ष्य की स्मृति सतत बनाये रखने के लिए सत्संग परम आवश्यक है। सत्संग आपके हृदय में उत्कण्ठा की अग्नि को प्रदीप्त रखता है। आलस्य को दूर करने, वासना-जाल से बचाने तथा लक्ष्य के विस्मरण से रक्षा करने के लिए वह ढाल है। सत्संग आपका सर्वोत्तम मित्र, आपका आध्यात्मिक पोषण है। सत्संग आपके माता-पिता से भी श्रेष्ठतर है; क्योंकि आपके माता-पिता ने तो आपको केवल यह भौतिक देह प्रदान की है, किन्तु सत्संग तो आध्यात्मिक आलोक प्रदान करता है। भगवत्-साक्षात्कार के लिए सत्संग ही मूलभूत साधन है। जहाँ सत्संग होता है, वहाँ महात्मा और सत्पुरुष जन एकत्र होते हैं। ये सन्त जन आपको सद्वस्तु का स्मरण दिलाते हैं, सांसारिक वस्तुओं की कृत्रिम चकाचौंध से आपकी रक्षा करते हैं और दुर्लंघ्य संसार-सागर से आपको बचाते हैं। उनके भव्य आदर्श आपको प्रेरणा देते हैं, उनके आत्म-उद्बोधक उपदेश आपका पथ-प्रदर्शन करते हैं। सत्संग से मनोनिग्रह, धारणा तथा ध्यान की व्यावहारिक शिक्षा मिलती है।

अतः सत्संग सांसारिक कार्यों में संलग्न गृहस्थों के लिए अपरिहार्य, त्याग-मार्ग के अनुगामी आध्यात्मिक साधकों के लिए आवश्यक तथा प्रौढ़ योगियों और वेदान्तियों के लिए भी अतीव लाभदायक है। यह सत्संग गृहस्थों में आध्यात्मिक जागरण लाता, आध्यात्मिक साधकों को प्रेरणा

देता और प्रौढ़ योगियों के उत्साह को बनाये रखता है। सत्पुरुषों और महात्माओं के लिए तो सत्संग आनन्द, प्रसन्नता और लोक-संग्रह में हेतु है। महात्मागण अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को संघर्षरत आत्माओं को दे कर संसार-बन्धन में पड़े हुए प्राणियों का उद्धार करना चाहते हैं। वे लोग सत्संग के प्राण हैं। सत्संग का उद्देश्य ही इन महात्माओं की संगति से आनन्द प्राप्त करना है।

सच्चा सत्संग-भवन आपके हृदय में

सत्संग-भवन तो वास्तव में वैकुण्ठ, कैलास अथवा परम-धाम है। सच्चा सत्संग-भवन तो आपके हृदय में ही है। वहाँ ही सत्, चित्, आनन्द अथवा ब्रह्म का निवास है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम के अभ्यास द्वारा मन का नियन्त्रण कीजिए। प्रत्याहार और धारणा के अभ्यास द्वारा मन को एकाग्र कीजिए, तब अपने हृदय में ही निवास करने वाले आत्मा पर ध्यान कीजिए। आत्म-विश्लेषण, अन्तरावलोकन तथा आत्म-जिज्ञासा के द्वारा आप अपने सत्संग भवन में नित्य प्रवेश कर सकते हैं। इससे आत्म-साक्षात्कार होगा और आप सदा-सर्वदा के लिए उस सत् से तादात्म्य प्राप्त करेंगे।

यही आपका लक्ष्य है। इस लक्ष्य को भूलिए नहीं। माया बहुत प्रबल है। आपकी सभी सदिच्छाओं के होते हुए भी आप अपने इस परम कर्तव्य को भूल जायेंगे। अतः सत्संग-भवन में आइए और सन्तों तथा योगियों के साथ सम्पर्क कीजिए। वे आपको मन के नियन्त्रण की, प्राणायाम और ब्रह्म-विचार के अभ्यास की, विषय-पदार्थों से मन को वियुक्त करने की तथा मन को सात्त्विक विचारों से आपूरित करने की विधि बतलायेंगे।

शरीर तथा मन के साथ तादात्म्य होना ही सारे दुःखों का मूल है। वास्तव में आप सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। इस स्वरूप में स्थित होना ही शाश्वत शान्ति और परमानन्द की कुंजी है। "**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो**" - यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। अपने ध्यान, जप, कीर्तन और प्रार्थना में नियमित रहिए। लोग कुछ समय तक संकीर्तन करते हैं, सत्संग में सम्मिलित होते हैं, फिर उसे छोड़ देते हैं। यह एक दुःखद भूल है। साधना में नियमितता अतीव महत्त्वपूर्ण है। जो कुछ भी आप करते हैं, उसे नियमित रूप से करें। ध्यान के समय को धीरे-धीरे बढ़ाइए। इस संसार की कृत्रिम चकाचौंध के मिथ्या प्रलोभनों से आकर्षित न हों। भौतिक सम्पत्ति से किसी को लाभ नहीं पहुँचा है। आपके पास करोड़ों रुपये बैंक में हो सकते हैं, सैकड़ों मोटरगाड़ियाँ और दरजनों मकान हो सकते हैं; परन्तु आप इनसे मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते। मानसिक शान्ति तो नियमित जप, ध्यान, कीर्तन और सत्संग से ही मिल सकती है। आत्म-साक्षात्कार के अनन्तर ही आप शाश्वत शान्ति का आनन्द ले सकते हैं। नियमित और सुव्यवस्थित आध्यात्मिक साधना के द्वारा अपने हृदय में ही सत्संग भवन का निर्माण कीजिए तथा भगवत्-साक्षात्कार प्राप्त कीजिए-सुदूर भविष्य में नहीं, अभी इसी क्षण ही। इस लक्ष्य को न भूलिए।

यहाँ मैं आपको उपनिषद् के महावाक्य की याद दिलाता हूँ; "**तत्त्वमसि**'-तू ही अनन्त, अविनाशी सच्चिदानन्द ब्रह्म है। नाम-स्मरण की धारा सतत बनाये रखें। कार्य करते समय भी मन-ही-मन 'श्रीराम' का जप कीजिए। श्रीराम भगवान् के अवतार तथा शिव के सखा ही नहीं हैं, वरन् वही सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परब्रह्म हैं। सदा श्रीराम का ध्यान कीजिए। भले

बनें। सुकर्म करें। भद्र बनें। उदार बनें। सत्संग, स्वाध्याय, जप, कीर्तन तथा ध्यान द्वारा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करें। भगवान् आप सबका कल्याण करें!

५. महात्मा कौन है?

महात्मा को पहचानना अत्यन्त कठिन है। कालिदास ही कालिदास को समझ सकता है। बुद्ध ही बुद्ध को समझ सकता है। चिरकाल तक सत्संग करने वाला अनुभवी व्यक्ति ही इस विषय में किसी निश्चित निष्कर्ष तक पहुँच सकता है; फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि उसका यह निष्कर्ष ठीक ही हो। दिव्य दृष्टि से सम्पन्न एक ज्ञानी ही ज्ञानी को प्रत्यक्ष देख और समझ सकता है।

एक साधु नग्न (दिगम्बर) रहता है। वह अकिंचन है, 'करतल भिक्षा तरुतल वासः' की उक्ति चरितार्थ करता है और वन में निवास करता है; परन्तु हो सकता है कि वह सबसे बड़ा दम्भी हो, वह बाह्य एवं आन्तरिक वासनाओं तथा सभी प्रकार की कामुक भावनाओं से पूर्ण एक बहुत बड़ा सांसारिक व्यक्ति हो। गाँजा और भाँग के मिलने पर वह खुशी से नाच उठता हो। उसका मन निराशा और अशान्ति से पूर्ण हो। इसके विपरीत एक व्यक्ति व्यस्त नगर में रहता है और एक बड़े बाबू का-सा जीवन-यापन करता है। वह शानदार वस्त्र पहनता और स्वादिष्ट भोजन करता है; फिर भी उसमें किसी वस्तु के प्रति किंचिन्मात्र भी राग नहीं है। श्री रामानुज भोग-विलास के मध्य ही रहते थे। उन्होंने भोगमय जीवन का ही प्रचार किया। राजा जनक राजकीय आनन्द लूटते थे; किन्तु फिर भी उनका कहना था : "मेरी सम्पत्ति अपार है; पर मेरे पास कुछ नहीं है। यदि सम्पूर्ण मिथिला जल कर भस्म हो जाये, तब भी मेरी कुछ हानि नहीं।"

महात्माओं की पहचान में भूल

साधु के विषय में निर्णय करने में गृहस्थजन प्रायः भूल कर बैठते हैं; क्योंकि ऐसा करने में वे साधु के बाह्य रूप पर ही विचार करते हैं। साधारण गृहस्थ की तो कौन कहे, इस सम्बन्ध में शिक्षित समुदाय भी प्रायः भूल करता है। हमारे विश्वविद्यालय की वर्तमान शिक्षा से साधु-महात्माओं की आध्यात्मिक प्रगति के निर्णय में सहायता नहीं मिल सकती। आध्यात्मिक मार्ग सर्वथा भिन्न है।

एक बार उत्तरकाशी में स्वामी देवगिरि जी महाराज योगवासिष्ठ पर प्रवचन कर रहे थे। वहाँ एक युवक साधु ने ज्ञानी की सातवीं भूमिका का वर्णन सुना। उसने तत्काल तुरीय अवस्था में होने का बहाना किया। भोजन करना छोड़ दिया। अपने कमरे में ही मल-मूत्र का त्याग करने लगा। पन्दरह दिनों तक यह स्थिति बनी रही। साथ वालों के कारण पूछने पर उसने बताया कि वह ज्ञान की सप्तम भूमिका में है। एक बुद्धिमान् व्यक्ति ने उसकी मानसिक स्थिति की जाँच करने के विचार से उसके शरीर से 'बिच्छू-काँटा' पौधे की पत्तियों का स्पर्श कराया। इससे उसके शरीर में बिच्छु-दंश-जैसी जलन होने लगी। वह जोर-जोर से चीत्कार करने लगा। उसने अपनी भूल स्वीकार की और सदा की भाँति भोजन करने लगा। आज-कल पंजाब, ऋषिकेश तथा अन्यान्य स्थानों में ऐसे ज्ञानी बहुत पाये जाते हैं। ऐसे ज्ञानियों से सावधान रहने की आवश्यकता है। ऐसे ज्ञानियों की

मानसिक स्थिति की परख जलती हुई लकड़ी उनके शरीर से स्पर्श करा कर बड़ी सरलता से की जा सकती है।

एक-दो घण्टे की सामान्य बातचीत से ही किसी साधु की आध्यात्मिक प्रगति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। सही मूल्यांकन के लिए उनके सान्निध्य में बहुत दिनों तक रहने की आवश्यकता होती है। ऐसे सिद्ध पुरुषों के उदाहरण पाये जाते हैं जिनके पास हाथी, घोड़े तथा सभी राजकीय वैभव के होते हुए भी वे अपनी इन भौतिक वस्तुओं से किंचिन्मात्र भी आसक्त नहीं थे। सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी उनमें सदा ज्ञान-निष्ठा और स्वरूप-स्थिति बनी रहती थी। यही पूर्ण विकास है। यही भगवद्गीता का सार-तत्त्व है। यही भगवान् श्रीकृष्ण की प्रमुख शिक्षा है।

आवश्यकता है मानसिक नग्नता की। राग, द्वेष, अहंकार आदि को दूर कर मन का मुण्डन कीजिए। फिर आप जहाँ चाहे वहाँ रह सकते हैं। नगर आपके लिए घोर जंगल के समान ही होगा। इसके विपरीत यदि आपका मन कामुक विचारों से अशान्त है, आपकी इन्द्रियाँ उपद्रवी हैं, तो सघन वन भी आपके लिए व्यस्त नगर-सा ही है। ज्ञान एक मानसिक स्थिति है। आप आत्म-साक्षात्कार करना चाहते हैं। बाह्य चिह्न कोई निश्चित मापदण्ड नहीं है। अतः साधु के बाह्य लक्षणों की ओर ध्यान न दीजिए। व्यक्ति किसी प्रकार का भी भोजन कर सकता है। वह किसी तरह का भी वस्त्र पहन सकता है। वह अपने केशों को अपने सुविधानुसार सँवार सकता है। यह सब अनावश्यक बातें हैं। सदा उसकी आन्तरिक मानसिक स्थिति को देखिए।

सच्चे धर्म का प्रारम्भ कहाँ से होता है ?

एक भक्त, संन्यासी अथवा योगी अपने इच्छानुसार जो चाहे खा सकता है, जैसा वस्त्र चाहे धारण कर सकता है और अपने मनोनुकूल केशों को सँवार सकता है। वह अपने प्रारब्धानुसार फल, सूखे पत्ते, जल अथवा उत्तम भोजन पर अपना निर्वाह कर सकता है। वह नंगा रह सकता है अथवा बहुमूल्य वस्त्र पहन सकता है। वह महान् तितिक्षु या तपस्वी हो सकता है। इन वस्तुओं से सच्चे धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है।

जब मनुष्य शरीर-चेतना से ऊपर उठ जाता है, तभी सच्चे धर्म का प्रारम्भ होता है। जब मनुष्य क्षुद्र प्रथाओं, प्रचलनों और मान्यताओं से ऊपर उठ जाता है, तभी सच्चे धर्म का प्रारम्भ होता है। जो शरीर-चेतना में ही हैं, ये निरर्थक सामाजिक बन्धन उनके लिए ही हैं। जिसने अपने को विकसित कर लिया है, उसके लिए इन बातों का कोई मूल्य नहीं है। सच्चा साधु-संन्यासी इन बातों से ऊपर होता है। यथार्थ रूप से विकसित व्यक्ति से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इन प्रारम्भिक सामाजिक अथवा धार्मिक बन्धनों का दास बने। सांसारिक मनोवृत्ति वाले लोग आहार और वेशभूषा पर अधिक बल देते हैं और इसी कारण वे सच्चे संन्यासी के गुणों को नहीं पहचान सकते। वे उनका बाह्य रूप ही देखते हैं और धोखा खाते हैं। उनके पीछे व्यर्थ ही पड़े रहते हैं। वे अकारण ही ईर्ष्या करते हैं। वे सत्संग से विशेष लाभ नहीं उठा पाते और प्राप्त सुअवसर को यों ही खो बैठते हैं। वे छोटी-छोटी बातों को ले कर दोष निकालते हैं। वे कहते हैं, "वह संन्यासी तो प्याज खाता है, यह साधु तम्बाकू पीता है, वह महात्मा तो दाढ़ी बनवाता है।" यदि आप इन छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान देंगे, तो आपको कोई लाभ नहीं होगा। बर्दवान के एक तिब्बती

बाबा महान् योगी हैं। वे तम्बाकू पीते तथा मांसाहार भी करते हैं। परन्तु इससे क्या? उन्हें तामसिक भोजन को सात्त्विक भोजन में रूपान्तरित करने की विधि जो मालूम है।

आध्यात्मिकता का मापदण्ड सिद्धि नहीं

इस सम्बन्ध में दूसरी भारी भूल जो लोग प्रायः करते हैं, वह यह है कि लोग प्रदर्शित सिद्धियों से ही साधु की महानता का निर्णय करते हैं। साधारणतः आज के जगत् में सिद्धियों से ही साधु की योग्यता और विशेषता को पहचाना जाता है। निश्चय ही यह एक महान् भूल है। उन्हें इस प्रकार साधु की महानता का निर्णय नहीं करना चाहिए। सिद्धियाँ तो धारणा-शक्ति की उपज हैं। आत्म-साक्षात्कार से सिद्धियों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। कोई साधु उग्र वासना और तीव्र इच्छा से सिद्धियों का प्रदर्शन कर सकता है और यदि बात ऐसी है, तो वह निस्सन्देह एक बड़ा गृहस्थ है। विश्वास कीजिए कि सिद्धियाँ आध्यात्मिक प्रगति में बहुत बड़ी बाधा हैं तथा जब तक व्यक्ति सिद्धियों के क्षेत्र में ही रमण करता है और उससे ऊपर उठने का प्रयास नहीं करता है, तब तक उसके लिए भगवत्-साक्षात्कार की किंचिन्मात्र भी आशा नहीं है। परन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं कि सिद्धियों का प्रदर्शन करने वाले व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसे 'कई उदाहरण पाये जाते हैं जब ऐसे व्यक्तियों ने विश्व के उत्थान के लिए कई सिद्धियाँ दिखायीं; पर स्वार्थवश उन्होंने कभी भी ऐसा नहीं किया।

श्रीरामकृष्ण परमहंस के समय में एक साधु उनके पास आया और दो सिद्धियाँ दिखायीं। एक तो यह थी कि वह लोगों की दृष्टि से ओझल रह कर कहीं भी विचरण कर सकता था। दूसरी यह थी कि जब वह चलता था, तो उसके गुदा-द्वार से ज्योति निकला करती थी। कुछ समय पश्चात् उस व्यक्ति ने एक महिला के कमरे में प्रवेश किया। वह महिला उसे देख न सकी। उसने अपनी सिद्धियों का दुरुपयोग किया। उस महिला के साथ उसका प्रेम हो गया। उसकी दोनों सिद्धियाँ जाती रहीं। आधुनिक जगत् के सामान्य लोग और शिक्षित जन भी केवल सिद्धियों से ही साधु की पहचान करते हैं। यह भयंकर भूल है; अतः मैं आपको सचेत कर रहा हूँ।

धर्मग्रन्थों को रट लेना योग नहीं

शास्त्रों के उद्धरण देना व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास का परिचायक नहीं है। एक व्यक्ति सारे वेदों, उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्र को कण्ठाग्र कर सकता है, फिर भी यह सम्भव है कि वह अतीव नीच हो। आजकल ऐसे बहुत से लोग हैं जो कुछ ग्रन्थों का थोड़ा अध्ययन कर अपने को बड़ा योगी, ज्ञानी या जीवन्मुक्त होने का दम्भ भरते हैं। योग के केवल सैद्धान्तिक ज्ञान से उसके फल का आनन्द नहीं मिल सकता। केवल बौद्धिक कुतूहल, उत्साह और आवेश से योगाभ्यास में रंचमात्र भी सहायता नहीं मिल सकती। योगदर्शन के कुछ सूत्रों को pi कर यह दिखाना कि 'मैं योगी हूँ', दम्भ के अतिरिक्त कुछ नहीं है। योगाभ्यास कोई व्यवसाय नहीं है। किसी यौगिक क्रिया का मिथ्या प्रदर्शन कर भगवान् को, अपने को तथा जनता को धोखा देना भयंकर अपराध है। इस अक्षम्य अपराध का कोई प्रायश्चित्त नहीं है। इसके लिए सर्वाधिक दण्ड अपेक्षित है।

तितिक्षा मात्र से कोई तपस्वी नहीं बनता

कई लोग ऐसे हैं जो साधु-संन्यासी के वेष में हठयौगिक क्रियाओं की अधिक चर्चा करते हैं और समाधि लगाने का दम्भ भर इधर-उधर घूमते-फिरते हैं। कोई तो केवल हवा और पानी पर रह सकता है, कोई पृथ्वी के नीचे छह मास तक रह सकता है और कोई तो नाइट्रिक एसिड, काँच के टुकड़े और विष निगल सकता है। ये सब तो केवल शारीरिक प्रशिक्षण हैं, साधु के वास्तविक गुण नहीं।

मन में अनुकरण की क्षमता है। स्वामी कृष्णाश्रम-जैसे महान् सन्त गंगोत्तरी में बहुत कठोर जीवन व्यतीत करते हैं। बहुत से लोग उनका अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं और अपने को महात्मा या सिद्ध पुरुष मानते हैं। कुछ नवयुवक विवेकचूडामणि और अवधूतगीता पढ़ कर, अपने अन्दर बिना आन्तरिक परिणति लाये ही अवधूत बनने का ढोंग करते हैं। काम, क्रोध, राग, द्वेष तो उनके मन में पूर्ववत् ही बने रहते हैं। अज्ञानी गृहस्थजन इन बाह्य रूपों से छले जाते हैं। तितिक्षा मात्र ही आध्यात्मिकता का लक्षण नहीं है। सीतापुर के मुन्शी श्री प्रद्युम्न केशव ने एक साधु का उदाहरण देते हुए मुझे बताया था कि वह भीषण गरमी में तप्त बालुका पर घण्टों लेट सकता था, फिर भी बड़े आवेश के साथ छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए लड़ पड़ता था। ये सब केवल शारीरिक प्रशिक्षण हैं। तितिक्षा तो मानसिक गुण है। वैराग्य भी मानसिक स्थिति है। संन्यास भी मानसिक ही होता है। दृढ़ इच्छा-शक्ति वाला मनुष्य एक क्षण में अपने सभी वस्त्र त्याग सकता है और बिना प्रारम्भिक शिक्षण या कष्ट के गंगोत्तरी में शीतकाल में वस्त्रहीन ही रह सकता है।

यदि तितिक्षा से ही मोक्ष मिले तब तो मछलियाँ, जो चौबीसों घण्टे जल में रहती हैं, मोक्ष पा सकती हैं। यदि केवल शिर मुँडाने से मुक्ति मिलती हो तो भेड़-बकरियाँ, जिनके बाल काटे जाते हैं, मुक्त हो जाते। यदि नाली में पड़े हुए रोटी के टुकड़े खाने और गोबर के ढेर पर सोने से मोक्ष मिलता हो, तब तो कुत्ते भी मोक्ष के पात्र हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी व्यक्ति के विषय में उसके बाह्य रूप को ही देख कर निर्णय न करें, वरन् उसकी आन्तरिक मानसिक स्थिति को भी देखें।

तब सच्चा महात्मा कौन है ?

न तो केवल जटा रखने से, जोरदार भाषण देने से या विद्वत्ता या चमत्कार के प्रदर्शन से ही कोई व्यक्ति पूर्णता या ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जिसमें राग, द्वेष, अहंकार, काम, क्रोध आदि की ऊर्मियाँ समूल नष्ट हो चुकी हैं, केवल वही व्यक्ति सदा सुखी और जीवन्मुक्त है।

सच्चे सन्त तो वे हैं जिनका मन शान्त है, जो लोभ से मुक्त हैं, जिन्होंने वासना पर विजय पा ली है, अपनी इन्द्रियों और अन्तःकरण को नियन्त्रित कर लिया है, जो भगवद्भक्त हैं, निःस्पृह हैं, सुख-दुःख में समभाव रहते हैं, निरासक्त हैं, जिनमें आत्म-संयम के गुण हैं और जो-कुछ मिल जाता है, उससे ही सन्तुष्ट रहते हैं।

जिस व्यक्ति में आप दया और विनम्रता पायें, उसे ही साधु समझें। साधु का हृदय दूसरों के कष्ट से द्रवित हो जाता है। मानव-हृदय पापों से बड़ा कठोर बन गया है। जब वह द्रवित होने

लगता है, तभी भगवान् का वहाँ प्राकट्य होता है। साधु को 'पंचदशी' पर भाषण देने की आवश्यकता नहीं है। उसमें गीता पर प्रभावशाली प्रवचन देने की क्षमता होना आवश्यक नहीं है। भले ही वह ब्रह्मसूत्र के एक ही वाक्य पर तीन घण्टे तक टीका करने में समर्थ न हो; परन्तु उसके शरीर से एक मधुर सुगन्ध निकलती रहती है, जिससे आप उसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। जब आप उसके पास जाते हैं, तब आपको शान्ति और आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है। उसके सान्निध्य में आपकी समस्त चिन्ताएँ और व्यग्रताएँ विलीन हो जाती हैं। उसके दृष्टि-निक्षेप से ही आप उन्नत होते हैं। उसका प्रत्येक शब्द आपको प्रेरणा प्रदान करता है और आपके हृदय-पटल पर अंकित हो जाता है। आपका स्वभाव परिवर्तित हो जाता है और आपके जीवन में एक नये अध्याय का शुभारम्भ होता है। साधु की शक्ति इतनी महान् होती है। सच्ची दया और विनम्रता की ऐसी ही महिमा है।

सत्संग-प्राप्ति की समस्या

आजकल गृहस्थों की यह शिकायत है कि अच्छे महात्माओं का अभाव है। यह तो केवल बहानेबाजी है। साधु-संगति का प्रश्न तो माँग-पूर्ति का प्रश्न है। यदि माँग सच्ची है, तो पूर्ति भी तत्काल होगी ही। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है। यदि आप सच्चे पिपासु हैं, तो आपका गुरु आपके द्वार पर ही मिलेगा। आप तो मनमौजी जीवन व्यतीत करते हैं, आपका मन कामुकता और अपवित्र वासनाओं से भरा हुआ है। उच्चतर दिव्य जीवन व्यतीत करने की आपको रंचमात्र भी चिन्ता नहीं है। व्यर्थ की बातों में, सांसारिक चर्चा में आप अपना बहुमूल्य समय नष्ट करते हैं। आप काम, लोभ, नाम और कीर्ति के दास बने हुए हैं। फिर भी आपकी यह शिकायत है कि मुझे अच्छा सत्संग नहीं मिलता है। पहले अपने को दोष दीजिए। अपनी भूल स्वीकार कीजिए। इसके लिए प्रायश्चित्त कीजिए। उपवास कीजिए। प्रार्थना कीजिए। एकान्त में कातर हो कर रुदन कीजिए। सर्वप्रथम अपने को योग्य अधिकारी बनाइए। तदनन्तर मेरे पास आइए। मैं आपको ऐसे पवित्र आत्मा के पाद-पद्म में पहुँचा दूँगा जो आपको सन्मार्ग बतलायेंगे, निर्देश करेंगे तथा आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर ले जायेंगे। ये महामानव अधिकारी साधकों की सदा खोज में रहते हैं। महात्मा तो प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। अभाव तो उपयुक्त साधकों का ही है। यदि आपकी यह शिकायत है कि सच्चे महात्मा नहीं हैं, तो महात्माओं की भी यह शिकायत है कि आजकल सच्चे सत्यान्वेषी नहीं हैं।

वास्तव में संसार में अच्छी वस्तुओं का सदा ही अभाव रहता है। कस्तूरी, केसर, रेडियम, चन्दन, विद्वान्, पुण्यात्मा, शूरवीर तथा परोपकारी व्यक्ति विरले ही होते हैं। जब इनके सम्बन्ध में ऐसी बात है तो सन्त, योगी, ज्ञानी और भक्तों के विषय में क्या कहना ! अपने को महात्माओं के संग का योग्य अधिकारी बनाने के लिए आपको आत्म-संयम, ब्रह्मचर्य, मानसिक स्थैर्य, मुमुक्षुता, विनम्रता, आज्ञाकारिता, सेवा-भावना आदि आवश्यक गुणों से सम्पन्न बनाना होगा। यदि आपको उनकी संगति प्राप्त हो गयी, तो समझ लीजिए कि आपकी मोक्ष की समस्या हल हो गयी।

संन्यासियों के प्रति व्यवहार

अधिकांश गृहस्थों की साधुओं में श्रद्धा नहीं है और यदि संयोगवश उन्हें कोई अच्छा साधु मिल भी जाये, तो वे उसके बाह्य रूप को देख कर दोष निकालते हैं और उससे अनेक प्रश्न पूछते हैं जैसे गृहस्थाश्रम का नाम, जाति, सम्प्रदाय, योग्यता, सम्बन्ध, आयु आदि। वे संन्यास के प्रारम्भिक सिद्धान्तों को ही भूल जाते हैं। वे कभी यह सोचते ही नहीं कि संन्यासी बनने के पश्चात् उसे ये सब चीजें भुला देनी पड़ती हैं; इतना ही क्यों, उसे तो अपनी शरीर-चेतना भी विस्मरित कर देनी होती है। वे यह नहीं समझते कि संन्यासी होने पर वह ब्राह्मण, साधु, प्राध्यापक अथवा किसी विशेष समाज, सम्प्रदाय और वर्ग का प्रतिनिधि नहीं रहा।

गृहस्थों को साधुओं से ऐसे प्रश्न नहीं करने चाहिए। शंका-समाधान की दृष्टि से दार्शनिक विषयों पर ही बातचीत करनी चाहिए। तभी वे सत्संग से लाभ उठा सकेंगे। सांसारिक लोगों के मन को बदलने तथा उसे अध्यात्म-पथ की ओर उन्मुख करने और पुराने दूषित संस्कारों का परिष्कार करने के लिए सत्संग ही सरलतम और द्रुतगामी मार्ग है। साधुओं की संगति में रहिए। उनकी संगतिमात्र आध्यात्मिक शिक्षा है।

सन्त के पास बड़ी ही विनम्रता और श्रद्धा से जाना चाहिए। यदि आप विनम्र भाव से उनकी सेवा में जायेंगे, तो वे निश्चय ही आपको आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करेंगे।

गृहस्थों को चाहिए कि सच्ची भक्ति से स्निग्ध हो हाथ में फल-फूल ले कर संन्यासियों के पास जायें। जब भी संन्यासी के दर्शन हों, बड़े भाव और प्रेम के साथ साष्टांग नमस्कार करना चाहिए। संन्यासियों के सम्मुख सांसारिक बातें नहीं करनी चाहिए। यदि उन्हें संन्यासियों से कोई शंका-समाधान करना हो, तो उन्हें अपना प्रश्न प्रस्तुत करना चाहिए और सदा यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्न आध्यात्मिक और ईश्वर-सम्बन्धी हो। जब गृहस्थ किसी संन्यासी के आश्रम या कुटीर में प्रवेश करें, तो केवल मजाक के लिए उन्हें अनाप-शनाप प्रश्न नहीं गढ़ने चाहिए। संन्यासियों का अधिक समय बरबाद नहीं करना चाहिए। अपने सामर्थ्य के अनुसार गृहस्थ को थोड़ी भेंट ले जानी चाहिए। संन्यासी तो इस धरा पर साक्षात् देव हैं। संन्यासियों की सेवा से बढ़ कर कोई भी यज्ञ अथवा सेवा नहीं है। यह सर्वाधिक पावनकारी है। वे धन्य हैं जो संन्यासियों की सेवा करते हैं, क्योंकि वे शीघ्र ही मानसिक शान्ति और हृदय की पवित्रता प्राप्त करेंगे।

६. कुसंगति के हानिकर प्रभाव

कुसंग के भयंकर दुष्परिणाम होते हैं। साधकों को सभी प्रकार के कुसंग का परित्याग करना चाहिए। बुरे साथियों के सम्पर्क से मन दूषित विचारों से पूर्ण हो जाता है। भगवान् और शास्त्रों में रही-सही श्रद्धा भी जाती रहती है। 'संगति से ही मनुष्य की पहचान होती है'; 'चोर का भाई गिरहकट' - ये सब कहावतें बिलकुल सच हैं। जिस प्रकार नये उपवन की गाय आदि से रक्षा करने के लिए प्रारम्भ में अच्छी प्रकार से बाड़ आदि लगानी पड़ती है, उसी प्रकार नये साधकों को बाहरी दूषित प्रभाव से अपना बचाव बड़ी सतर्कता से करना चाहिए, नहीं तो उनका सर्वनाश निश्चित है। असत्यवादी, व्यभिचारी, चोर, ठग, कपटी, बकवादी, चुगलखोर और नास्तिकों की संगति से सर्वथा बचना चाहिए। स्त्रियों और लम्पटों की संगति भी विपदकारी है।

विल्वमंगल एक बार चिन्तामणि का नाच देखने गये। उनका सम्पूर्ण अन्तःकरण विषाक्त हो गया। वे एक धार्मिक ब्राह्मण के गुणवान् पुत्र थे। उसके सभी पवित्र विचार जाते रहे। वे उसके प्रेम-पाश में फँस गये और अपना जीवन नष्ट कर डाला। इस प्रकार के हजारों उदाहरण हैं। आन्ध्र प्रदेश के वेमन्ना भी आरम्भ में कुसंगति के कारण पतित हो गये थे। कुसंग से बढ़ कर खतरनाक अन्य कोई वस्तु नहीं है। यदि अपनी पत्नी में भी धार्मिक प्रवृत्ति नहीं है और उसके विचार सांसारिक हैं, तो उसका संग भी कुसंग ही है। इसी कारण धार्मिक ग्रन्थ गंगा-तट तथा हिमालय के निर्जन स्थानों की इतनी महिमा गाते हैं।

कुसंग क्या है ?

बुरा परिपार्श्व, नग्न चित्र, अश्लील गीत, प्रेम-कथानक के उपन्यास, सिनेमा, नाटक, पशुओं को मैथुन करते हुए देखना, कुविचारजनक शब्द-संक्षेप में कहें, तो जिस किसी बात से मन में दूषित विचार उत्पन्न होते हैं, वह कुसंग ही है। जिनसे मन में कुवृत्ति और बुरे विचारों का जन्म हो, उन्हें कुसंग ही समझना चाहिए। कुसंग सत्संग का विपरीतार्थी है जिसका अर्थ होता है 'बुरी संगति'।

स्थान, आहार, जल, परिवार, पड़ोस, दृश्य, साहित्य, आलोचना, आजीविका तथा उपासना-पद्धति-ये दश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषय हैं जो अपनी प्रकृति के अनुसार हमें सत्संग या कुसंग की ओर से जाते हैं।

साधक प्रायः शिकायत करते हैं: "हम तो गत पन्दरह वर्षों से साधना कर रहे हैं, किन्तु कोई ठोस आध्यात्मिक प्रगति नहीं हुई।" इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि उन्होंने पूर्णरूपेण कुसंग का परित्याग नहीं किया है। समाचार-पत्रों में सभी प्रकार के सांसारिक विषयों की चर्चा रहती है। साधकों को समाचार-पत्र बिलकुल नहीं पढ़ने चाहिए। समाचार-पत्र पढ़ने से सांसारिक संस्कार उदित होते हैं, मन में संवेदनात्मक क्षोभ उत्पन्न होता है, मन बहिर्मुखी बनता है, 'संसार ठोस सत्य है', ऐसा भ्रान्त विचार पैदा होता है और नाम-रूपात्मक जगत् से परे जो सत्य है, उसका विस्मरण होता है।

कपटी मित्र

यदि आप दश मन दूध में एक तोला फिटकिरी डाल दें, तो सारा दूध पीने के योग्य नहीं रह जायेगा। इसी प्रकार एक क्षण का कुसंग भी दश वर्ष के सत्संग के सप्रभाव को नष्ट कर डालता है। कुसंग भक्ति का शत्रु है। कुसंग का परित्याग कर सत्संग का सेवन कीजिए।

आपके कपटी मित्र ही आपके वास्तविक शत्रु हैं। इस संसार में एक भी निस्स्वार्थ मित्र आपको नहीं मिल सकता। सदा सावधान रहिए। मित्रगण आपके पास आ कर व्यर्थ की बातें बनाते हैं और आपका बहुमूल्य समय यों ही नष्ट करते हैं। वे आपको नीचे घसीटना और सांसारिक बनाना चाहते हैं। ऐसे मित्रों की पुष्पित वाणी के भुलावे में न आइए। ऐसे मित्रों से कठोरता से सम्बन्ध-विच्छेद कर दीजिए। सदा एकाकी रहिए। उन अमर मित्र में (परम प्रभु में) विश्वास रखिए जो आपके हृदय में निवास करते हैं। वे आपको मनचाही वस्तु देंगे। यदि आपको महात्माओं का सत्संग न प्राप्त हो, तो आत्म-साक्षात्कार-प्राप्त सन्त-महात्माओं और भागवतों द्वारा रचित सद्ग्रन्थों को पढ़िए।

७. सत्संग का संचालन-संन्यासियों के प्रति

संन्यासी वह है जिसने देहाध्यास, स्वार्थ, वासना, अहंकार, अभिमान का त्याग कर दिया है। ब्रह्मा के चार मानस-पुत्र (श्री सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनत्सुजात), श्री दत्तात्रेय और श्री शंकराचार्य शुद्ध निवृत्ति-पथ के अग्रदूत हैं। वे संन्यास-आश्रम के जनक हैं।

समय की गति

आज का विश्व आर्थिक, जातीय, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, औद्योगिक तथा आध्यात्मिक प्रगति भी चाहता है। आध्यात्मिक पक्ष की कभी भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। वही तो सभी प्रगतियों का आधार है। आजकल कर्मयोग-क्षेत्र के नेता गण केवल कर्म पर ही अधिक बल देते हैं और जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की पूर्णतः अवहेलना करते हैं। यही नहीं, अनेक संस्थाओं के संन्यासी जन भी केवल समाज-सेवा ही कर रहे हैं। कुछ संन्यासियों में केवल पाण्डित्य है। वे समाज से थोड़ा सम्मान प्राप्त कर लेते हैं। उन्होंने जीवन के चिन्तन-पक्ष को तिलांजलि दे रखी है। उनमें आत्म-बल तो है नहीं; अतः वे जनता के हृदय पर सच्चा और स्थायी प्रभाव नहीं डाल सकते।

आध्यात्मिक व्यक्तियों, योगियों, ज्ञानियों तथा संन्यासियों को तो कार्तिक मास के दूज की तरह या धूमकेतु के रूप में विश्व-रंगमंच पर कुछ क्षण के लिए ही पदार्पण करना चाहिए अथवा प्रभु ईसा के समान सार्वजनिक क्षेत्र में प्रकट हो कर महान् कार्यों के सम्पादनार्थ अपनी शक्ति प्रदान करनी चाहिए और फिर वहाँ से तुरन्त अलग हो जाना चाहिए। अधिक काल तक आध्यात्मिक वर्ग चलाने तथा आश्रम स्थापित करने का कार्य तो निम्न वर्ग के संन्यासियों का है। यह कार्य आध्यात्मिक दिग्गजों की प्रकृति के अनुकूल न होगा। जिस प्रकार गंगा जी वर्ष में केवल चार मास अपने पावन जल से पृथ्वी का सिंचन करती हैं, उसी प्रकार आचार्य गण भी स्वल्प काल में ही सारे देश को ज्ञानामृत से आपूरित कर देते हैं।

सुखद जीवन का प्रलोभन

किसी संन्यासी या गृहस्थ को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के विचार से आश्रम की स्थापना नहीं करनी चाहिए। बहुत से संन्यासी जब आश्रम की स्थापना करते हैं, तो प्रारम्भ में उनके विचार बहुत शुद्ध होते हैं-आरम्भ में से यहाँ मेरा तात्पर्य है, जब वे साधनहीन रहते हैं; किन्तु जब वे पर्याप्त प्रशंसक या भक्त पा लेते हैं, तब निःस्वार्थ सेवा की भावना समाप्त हो जाती है और उनके हृदय में उसके स्थान में स्वार्थ-भाव घर कर लेता है। जिस उद्देश्य से उन्होंने आश्रम की स्थापना की थी, वह निष्फल हो गया। अब उसने अर्थोपार्जन की संस्था का रूप ले लिया। सामान्य लोगों को उस आश्रम के प्रति कोई आकर्षण नहीं रहा। यदि संस्था का प्रधान वैराग्य और त्यागमय जीवन व्यतीत करता है, तो उसका आश्रम अनन्त शान्ति, सुख और आनन्द का केन्द्र बन जाता है। लाखों लोग उस ओर आकर्षित होते हैं। विश्व को ऐसे आश्रमों की सदा आवश्यकता रहेगी जिनके प्रधान महान् आध्यात्मिक आचार्य हों।

कुछ नवयुवक संन्यासी कुचला सेवन करते हैं। वे एक वर्ष में उसके १२० बीज निगल जाते हैं, तीन वर्ष तक लघु सिद्धान्त कौमुदी तथा न्याय का अध्ययन करते हैं और अपने को सच्चा सिद्ध पुरुष मान कर सांसारिक लोगों के साथ मुक्त रूप से मिलते-जुलते हैं। यह उनकी भयंकर भूल है। कुचले से नपुंसकता आती है; किन्तु नपुंसकता से ब्रह्मचर्य का पालन तो नहीं होता। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उनकी शीघ्र ही अधोगति होती है। पूर्ण ज्ञानी और योगियों को भी बहुत सावधान रहना चाहिए। उन्हें सांसारिक लोगों के साथ अधिक सम्पर्क बढ़ाने से बचना चाहिए। मछली को मैथुन करते देख कर एक महान् ऋषि में काम-वासना जाग्रत हो उठी। महिलाओं की चूड़ियों की झनकार, रंगीन और बूटेदार साड़ियों का दृश्य मन में तीव्र वासना उत्पन्न करते हैं। उनका संसर्ग दूषित है। काम-वासना बड़ी प्रबल है। माया रहस्यपूर्ण है। साधक सावधान!

रसास्वाद तथा सुस्वादु भोजन के कारण ही असंयमित युवक साधक, ब्रह्मचारी तथा संन्यासी सत्संग के बहाने गृहस्थों के निकट-सम्पर्क में आते हैं। साधको! क्या आपने सुस्वादु भोजन के लिए ही अपने माता-पिता को छोड़ा, अपने पद तथा सम्पत्ति को त्यागा तथा संन्यास-मार्ग ग्रहण किया अथवा आत्म-साक्षात्कार के लिए आपने यह सब-कुछ छोड़ा? यदि आपने सुस्वादु भोजन के लिए ही उपर्युक्त वस्तुओं का त्याग किया है, तो अच्छा यह होता कि आप संसार में रह कर ही अर्थोपार्जन कर आनन्द लेते। संन्यास-आश्रम को कलंकित न करें। यदि आप जिह्वा का नियन्त्रण नहीं कर सकते, तो गेरुए वस्त्र को दूर फेंकिए, संसारी बन जाइए, कुछ काम करके अर्थोपार्जन

कीजिए। कर्मयोग के द्वारा आत्म-विकास कीजिए। जिह्वा को नियन्त्रित किये बिना मन का नियन्त्रण सम्भव नहीं है।

जब एक व्यक्ति गेरुआ वस्त्र धारण करता है, तो उसे स्मरण रखना चाहिए कि वह जीवन के उच्चतर क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है, उस पर बड़ा उत्तरदायित्व है और वह शीघ्र ही संसार का एक महान् धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षक बनने वाला है। उसे दिव्य गुणों के अर्जन का और पवित्र तथा वैराग्यमय आदर्श जीवन व्यतीत करने का यथाशक्य प्रयास करना चाहिए।

क्या यही सत्संग है?

आजकल सत्संग का अध:पतन हो गया है। वह मानसिक मनोरंजन का साधन बन गया है। संन्यासियों तथा गृहस्थों के बीच सन्ध्या-समय एक घण्टा वेदान्त-चर्चा, साथ ही संसारी बातें, कुछ राजनीति, कुछ परनिन्दा, कुछ चुगली, हा-हा-ही-ही, व्यर्थ की बातें - इसे ही सत्संग का नाम दिया जाने लगा है। कई वर्ष तक सत्संग करने के अनन्तर भी सत्संग करने वाले संन्यासियों और श्रोताओं का मन उसी स्थिति में बना रहता है। उनमें आध्यात्मिक प्रगति नहीं हो पाती।

जब भी साधु-संन्यासी संसार में विचरण करें, तो उन्हें गृहस्थों के समक्ष वैराग्यमय जीवन का आदर्श प्रदर्शित करना चाहिए। उन्हें गृहस्थों से जीवनोपयोगी वस्तुएँ ही स्वीकार करनी चाहिए। उनके साथ मुक्त रूप से मिलना-जुलना नहीं चाहिए। उन्हें गाँव या नगर के बाहर एकान्त स्थान में रहना चाहिए। आध्यात्मिक वर्ग चलाने में उन्हें बहुत ही गम्भीर रहना चाहिए। बीच-बीच में सांसारिक बातों की चर्चा नहीं करनी चाहिए। हास्यजनक कहानियाँ अधिक नहीं कहनी चाहिए। हँसी-मजाक नहीं करना चाहिए। वहाँ का वातावरण पवित्र, शान्त और गम्भीर होना चाहिए जिससे श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जायें। पूर्ण शान्ति का वातावरण आवश्यक है, तभी गृहस्थ जन प्रभावित होंगे, तभी वे अनुभव करेंगे कि उन्हें सत्संग से कुछ प्राप्ति हुई है।

खीर-पराँठा-पक्षी

गृहस्थों से संन्यासी जन ज्यों-ही बार-बार वस्तुओं की माँग करने लगते हैं, त्यों-ही उनका प्रभाव और सम्मान घटने लगता है। उन्हें वह स्थान त्याग करने को बाध्य होना पड़ता है। कुछ निर्लज्ज संन्यासी कई महीनों तक जोंक की तरह गृहस्थों से चिमटे रहते हैं। वे तो खीर-पराँठा-पक्षी हैं, सच्चे संन्यासी नहीं। आगामी जनगणना का विवरण प्रस्तुत करते समय अधिकारियों को इस विषय में बहुत सावधान रहना चाहिए। इन व्यक्तियों को साधु-संन्यासियों की श्रेणी में नहीं रखना चाहिए। ये लोग तो रँगे वस्त्र में पेशेवर हैं जैसे कि मेमने की खाल ओढ़े भेड़िया। सच्चे संन्यासियों की विश्वसनीय सूची होनी चाहिए। साधुओं की संख्या व्यर्थ में बढ़ाने तथा उसे बढ़ा कर चौहत्तर लाख बताने की क्या आवश्यकता है? आपको तो दो हजार से अधिक अच्छे सुसंस्कृत संन्यासी नहीं मिलेंगे, जो अपने लिए और अन्ततः देश के लिए उपयोगी हों। सच्चा साधु-संन्यासी तो प्रकाशमान् सूर्य के समान है। वह तो अहर्निश प्रकाश विकीर्ण करता रहता है।

साधु-संन्यासी इधर-उधर घूमने तथा भाषण देने के बदले अपनी कुटिया के पास ठोस और कुशल कार्य कर सकते हैं। जब पुष्प विकसित होता है, तो वह भौरों को निमन्त्रण नहीं भेजता । वे स्वयं ही आ जाते हैं। इसी प्रकार सच्चे सत्यान्वेषी साधक सच्चे संन्यासियों की कुटिया पर स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। संन्यासियों को इधर-उधर जाने और अपना विज्ञापन देने की आवश्यकता नहीं है। सार्वजनिक मंच पर जो भाषण दिया जाता है, उसका प्रभाव केवल आधे घण्टे तक ही रहता है। कुछ हो-हल्ला, लड़ाई-झगड़े, तालियों की गूंज, 'क्या खूब, क्या खूब' की आवाज सुनायी देती है। परन्तु सच्चे संन्यासी की कुटिया पर तो सच्चे अधिकारी ही जायेंगे। इन साधकों के हृदय ऐसे संन्यासियों के वचनामृत से परिष्कृत हो जायेंगे। संन्यासियों के लिए साधकों का प्रशिक्षण ही सबसे बड़ी सेवा है। तब प्रत्येक साधक शान्ति, आनन्द और ज्ञान का केन्द्र बन जायेगा। किन्तु जब संन्यासी इधर-उधर भ्रमण करते हैं, तो उनका अमूल्य समय व्यर्थ जाता है; क्योंकि तब सभी प्रकार के लोग कुतूहलवश उनसे मिलने आते हैं।

सच्चे संन्यासी प्रकाश-स्तम्भ हैं जो अपने आलोक से विश्व का पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं। जिस प्रकार प्रकाश-स्तम्भ सुदूर सागर में स्थित जलपोतों को प्रकाश देता है, उसी प्रकार संन्यासी अज्ञानान्धकार के पंक में डूबे हुए जीवों को दिव्य प्रकाश देते हैं। वे समस्त विश्व को चलायमान कर सकते हैं।

सच्चे संन्यासियों को शत-शत प्रणाम जो अपना सर्वस्व त्याग का सन्मार्ग पर आरूढ़ हैं। उन संन्यासियों का हार्दिक अभिनन्दन है जो निज-स्वरूप में स्थित हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं। परिव्राजकों, आचार्यों, ब्रह्मविद्या के गुरुओं को प्रणाम जो सर्वत्र आत्मज्ञान प्रसारित करते हैं, हम सबको उनके आशीर्वाद प्राप्त हों!

८. प्रेरणादायी कथाएँ

ऋषि विश्वामित्र तथा वसिष्ठ

एक बार ऋषि विश्वामित्र तथा वसिष्ठ में विवाद हुआ। विश्वामित्र महान् तपस्वी थे। अपनी तपश्चर्या के बल से उन्होंने त्रिशंकु के लिए तीसरे जगत् की सृष्टि की थी। विश्वामित्र ने वसिष्ठ से कहा : "इस संसार में तप ही सर्वश्रेष्ठ है।" वसिष्ठ ने इस पर आपत्ति की और कहा : "सत्संग तो तपस्या से भी श्रेष्ठ है।" अब उन दोनों ने इस विषय में ब्रह्मा का मत जानने के लिए उनके पास जाने का निश्चय किया। वे दोनों ब्रह्मा के पास पहुँचे और उनका अन्तिम निर्णय जानने के लिए उनके सामने अपना विषय रखा। भगवान् ब्रह्मा ने कहा : "मैं सृष्टि-कार्य में व्यस्त हूँ। मेरे पास समय नहीं है। कृपा कर भगवान् शिव के पास जाइए। उनके पास पर्याप्त समय है। अभी उनके पास कोई कार्य नहीं है। उनका कार्य तो प्रलय काल में ही आरम्भ होता है।"

इस पर विश्वामित्र भगवान् शिव का विचार जानने तथा अन्तिम निर्णय सुनने के लिए उनके पास गये। भगवान् शिव ने कहा : "इस समय तो मैं अपने एक भक्त को देखने जा रहा हूँ। अभी मेरे पास समय नहीं है। आप कृपा कर भगवान् विष्णु के पास जाइए। वे आपकी बातों को ध्यान से सुनेंगे।" तब वे भगवान् विष्णु के पास गये। भगवान् विष्णु ने कहा : " इस विषय का निर्णय नहीं कर सकता। कृपा कर आदिशेष के पास जाइए। वे अपनी सहस्र जिह्वाओं से सदा राम नाम जपते रहते हैं। वे महान् भक्त हैं। वे ही अन्तिम निर्णय देने के लिए योग्य पुरुष हैं। वे महान् ज्ञानी भी हैं।'

इस पर वे दोनों आदिशेष के पास गये और अपने-अपने दृष्टिकोण उनके समक्ष रखे। आदिशेष ने उत्तर दिया: "मैं निश्चय ही अपना मत दूँगा। कृपा कर मेरे मस्तक पर से पृथ्वी का बोझ हटाइए; तभी मैं इस विषय पर अपने विचार प्रकट कर सकूँगा।" तब उन दोनों ने कहा : "आदिशेष जी ! इस बोझ को हटाने का उपाय कृपा कर बताइए।" आदिशेष ने उत्तर दिया : "आप लोग कृपा कर अपनी तपश्चर्या और सत्संग का फल मुझे दे दें। इससे मैं भार-मुक्त हो जाऊँगा।

विश्वामित्र ने उत्तर दिया : "बस, इतना ही? मैं आपको अपनी एक सौ वर्ष की तपस्या का फल देता हूँ।" इससे आदिशेष के शिर का बोझ दूर नहीं हुआ। तब विश्वामित्र ने कहा: "अब, मैं आपको अपने एक हजार वर्ष के तप का फल देता हूँ।" अब भी आदिशेष का भार दूर नहीं हुआ। तब विश्वामित्र ने कहा : "अब मैं अपने समस्त जीवन के तप का फल देता हूँ।" आदिशेष का भार इससे भी दूर नहीं हुआ।

अब वसिष्ठ ने कहा: "मैं अपने एक क्षण के सत्संग का फल आपको देता हूँ।" आदिशेष के शिर का बोझ तत्काल दूर हो गया।

इस पर विश्वामित्र का शिर लज्जा से झुक गया। उन्होंने न तो आदिशेष से और न वसिष्ठ से एक शब्द भी कहा। उन्होंने यह अनुभव किया कि तप से सत्संग श्रेष्ठ है। उनका तप का अभिमान चूर-चूर हो गया।

साधकों को संसार-सागर का सन्तरण करने के लिए सत्संग एक सुरक्षित दृढ़ नौका के समान है। सत्संग की महिमा अवर्णनीय है। सभी शास्त्र सत्संग की बड़ी महिमा गाते हैं। सत्संग का आश्रय लेने से सभी कुछ सुलभ हो जाता है। कुसंस्कारों को सुधारने और हृदय में वैराग्य उत्पन्न

करने के लिए सत्संग ही एक अमोघ साधन है। माया के प्रलोभन तथा आक्रमण से साधकों को बचाने के लिए सत्संग ही अजेय गढ़ है। सत्संग के बिना आध्यात्मिक प्रगति सम्भव नहीं है।

सत्संग, शान्ति, सन्तोष तथा विचार-ये मोक्ष-द्वार के चार प्रहरी हैं। सत्संग इनमें वरिष्ठ है। यदि आप सत्संग से मैत्री कर लें, तो अन्य तीनों प्रहरी भी शीघ्र ही आपके मित्र बन जायेंगे और आप मोक्ष के परम धाम में बड़ी सुगमता से प्रवेश कर सकेंगे।

सन्त हरिदास तथा पतित नारी

श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य सन्त हरिदास एक बार विचरण करते हुए एक ग्राम में जा पहुँचे। वह रात-दिन हरि-नाम-स्मरण में ही लगे रहते थे। उनके कीर्तन से पास में रहने वाले एक पुलिस सुपरिन्टेण्डेन्ट (आरक्षी-अधीक्षक) को बाधा पहुँचती थी। उनको पथभ्रष्ट करने के लिए उसने एक उपाय खोज निकाला। इस उद्देश्य से उसने एक परम सुन्दरी वेश्या को हरिदास के पास भेजा। अपने सौन्दर्य और मादक चितवन पर गर्व करने वाली वह वेश्या एक रात्रि को सन्त हरिदास के पास पहुँची। भला एक सन्त अपनी अविचल भक्ति से कैसे डिग सकता था। हरिदास रात भर अविराम अ गति से नाम-स्मरण करते रहे। प्रातःकाल उस वेश्या को अपने सामने देख में कर उन्होंने कहा : "कृपा कर कल रात को आइए। तब मैं आपसे बात कर सकूँगा।" ऐसा कह कर वे पुनः नाम-स्मरण में संलग्न हो गये। उस वेश्या प को आश्चर्य हुआ। 'भला यह कैसा आदमी है? कदाचित् कल मैं अपने उद्देश्य में सफल हो जाऊँगी' - इस प्रकार सोच कर वह वहाँ से चली गयी।

दूसरी रात को वह वेश्या दूने उत्साह के साथ पुनः सन्त हरिदास के पास आयी; परन्तु फिर भी वही बात हुई। उसने अपने मन में सोचा- 'सन्त ने मुझसे भी अधिक सौन्दर्यमयी कोई वस्तु प्राप्त कर ली होगी। यही कारण है, अन्यथा जिस प्रकार शलभ अग्नि में कूद पड़ता है, उसी प्रकार यह भी मेरे सौन्दर्य-जाल में फँस गये होते। मैं भी उसी सौन्दयों के सौन्दर्य को प्राप्त करूँगी जिसने सन्त हरिदास को मतवाला बना रखा है।'

सन्त के सम्पर्क से उसमें परिवर्तन आया। वह भगवत्-साक्षात्कार के लिए लालायित हो उठी। सन्त हरिदास ने उस वेश्या को एक आसन और माला दे कर उपदेश किया कि वह अपनी समस्त सम्पत्ति निर्धनों को दे कर प्रभु के नाम-स्मरण में संलग्न हो जाये।

कुछ काल के अनन्तर वह पतिता प्रभु की पवित्र भक्त बन गयी। उसे भगवान् के दर्शन हुए और वह परमानन्द को प्राप्त हुई। सत्संग की ऐसी महिमा है।

अपने पाँवों से मेरी कमर दबाओ

एक बार एक सन्त ने अपने शिष्य की परीक्षा लेने के विचार से उसे अपनी कमर को पैर से दबाने का आदेश दिया। सन्त ने कहा : "मेरी कमर में दर्द है। प्रिय शिष्य, क्या तुम अपने पाँवों से उसे दबा दोगे?"

शिष्य ने उत्तर दिया : "महाराज! आपके पावन शरीर पर मैं अपना पाँव कैसे रखूँ? यह तो बड़ा पाप है।"

सन्त ने उत्तर दिया -"पर क्या तुम मेरी आज्ञा न मान कर अपने पैर मेरी जिह्वा पर नहीं रख रहे हो ?

इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिए। गुरु की आज्ञा का पालन करने में शिष्य को अपनी बुद्धि नहीं लगानी चाहिए। उसे उद्दण्डता त्याग कर गुरु के प्रति सच्ची और स्थायी श्रद्धा का विकास करना चाहिए। सन्त की सेवा प्रत्येक सम्भव उपाय से करनी चाहिए। अपने शरीर से उनकी सेवा करनी चाहिए, उनके रूप का चिन्तन करना चाहिए, उनके आदेशों का अविलम्ब पालन करना चाहिए, उनके लक्ष्य की पूर्ति में लगना चाहिए आदि। उनमें अविचल श्रद्धा होनी चाहिए। सन्तों की लीला रहस्यमय है। आपसे सन्त जो भी सेवा लेते हैं, वह आपके हित के लिए ही है। वे तो स्वयं निस्पृह होते हैं। अनेक प्रकार के आदेश दे कर और आपकी अनेक प्रकार से परीक्षा ले कर वे आपको दिव्य ज्ञान का अधिकारी बनाते हैं।

सन्तों की सेवा चमत्कार देखने के लिए नहीं करनी चाहिए। सन्त से आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करना चाहिए। भगवत्-साक्षात्कार के लिए ही सन्त की सेवा शरीर, मन और आत्मा से करनी चाहिए। पत्नी, सन्तान, धन, सम्मान या अन्य स्वार्थ की भावना से सन्तों की सेवा करना महामूर्खता है। यद्यपि सन्तों के सम्पर्क से सभी सांसारिक अध्यवसायों में सफलता मिलती है, परन्तु वह तो हीरे के बदले पत्थर लेने के समान ही होगा।

९. सत्संग और स्वाध्याय-सम्बन्धी विविध पद

महात्माओं के दर्शन का फल

महात्माओं के दर्शन-मात्र से,
भक्तों में अनेक गुण आ जाते हैं,
उनके सभी पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं,
उनमें श्रेयस् का अवतरण होता है,
नाम और यश प्राप्त होते हैं।
सत्संग की महिमा अवर्णनीय है।
सन्तों के आशिष से मानव सहज ही,
भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

सत्संग से न चूकिए

उदात्त विचार,
जो एक वक्ता को कभी भी नहीं सूझते,
दूसरे को सूझ जाया करते हैं,
आप उसे कभी न छोड़ें।
उदात्त विचार
सम्भव है वक्ता को एक दिन न सूझे,
किन्तु दूसरे दिन उसकी सूझ में आ जाये;
आप उसे कभी न छोड़ें।
महात्माओं और सन्तों के सत्संग का
सुअवसर कभी न चूकिए।

साधुओं के सम्बन्ध में निर्णय करना एक भूलच

केवल सन्त ही सन्त को परख सकते हैं।
कभी-कभी वे सर्वज्ञ-सा दीख पड़ते हैं,
कभी-कभी वे अज्ञानी-सा दीख पड़ते हैं,
वे जानते हैं कि कब ब्रह्मनिष्ठ के समान व्यवहार करना चाहिए
और कब एक नादान के समान

नके विषय में कुछ भी निर्णय न करें।
यदि आप श्रद्धा, भक्ति तथा आध्यात्मिक पिपासा के साथ
उचित भाव ले कर उनके पास जायें
तो वे आपको सर्वोच्च ज्ञान प्रदान करेंगे।
यदि आप दुर्भावना से उनके पास जायेंगे
तो वे उन्मत्त के समान व्यवहार करेंगे,
जिससे आप धोखे में पड़ जायेंगे
और आपको भारी क्षति उठानी पड़ेगी।

साधु कौन है ?

बहुत से व्यक्ति सोचते हैं
साधु को केवल दो रोटी खानी चाहिए;
यदि वह तीन या चार रोटी खाता है
तो वह साधु नहीं।
साधु को केवल एक छोटा तौलिया पहनना चाहिए;
यदि वह कमीज या कोट पहनता है
तो वह साधु नहीं।
अज्ञान, भ्रान्ति, मूर्खता और दुष्टता की
यह कैसी भयावह स्थिति है।
इनसे साधुओं के विषय में कुछ निर्णय न करो।
त्याग एक मानसिक स्थिति है
और साधुता आन्तरिक विकास।

नकली सन्त

वह लम्बी जटाएँ और दाढ़ी रखता है,
वह साथ में योग-दण्ड और कमण्डल भी लिये फिरता है,
वह 'शिवोऽहम्', 'राम-राम' कहता रहता है,
वह अनेकों मालाएँ गले में धारण करता है।
वह गीता और रामायण के ग्रन्थ अपने साथ रखता है,
वह अर्द्धनिमीलित नेत्र से पद्मासन में बैठता है।
वह कई दिनों तक निराहार रहता है।
वह ढोंगी है, नकली सन्त है।
मित्रो सावधान! बन्धुओ सावधान !
वह सन्त नहीं, भागवत के उसमें कोई लक्षण नहीं,
वह आपका गला घोंट देगा।
वह मक्कार है, धूर्त है,

उसे अवश्य ही नरकवास मिलेगा।

नकली संन्यासी

नकली संन्यासी गैरिक वस्त्र धारण कर,
पवित्र संन्यासाश्रम को कलंकित करते हैं,
वे उद्दण्ड हैं, कपटी हैं;
और हैं निरंकुश।
वे छद्मवेश धारण कर घूमते-फिरते हैं,
वे जाली सन्त हैं; वितण्डावादी हैं।
वे सन्त-परम्परा को दूषित करते हैं।
मित्रो, उनसे सावधान रहो, सतर्क रहो।

संग-दोष

कुसंगति का दोष संग-दोष है।
साधकों को बहुत सावधान रहना है,
उन्हें सांसारिक लोगों से स्वच्छन्द रूप से नहीं मिलना चाहिए,
नहीं तो उनका भयंकर पतन होगा।
वे संसारियों के जीवन की नकल करने लगेंगे
और जिन विषय-वस्तुओं को त्याग दिया है,
उन्हें पुनः उपभोग करने लगेंगे।
वे सांसारिकता के धरातल पर
नीचे उतर आयेंगे।
सभी प्रकार की सांसारिक वासनाएँ,
उनके मन में प्रवेश कर जायेंगी।
अतः जब तक उनका नव-गठन नहीं हो जाता
और उन्हें पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो जाती,
तब तक एकान्त-सेवन ही करना चाहिए।

कुसंगति का दुष्प्रभाव

वन में एक तपस्वी था।
कई वर्षों से वह तप कर रहा था।
उसने नारी जाति को कभी देखा नहीं था,

मिष्टान्न का आस्वादन नहीं किया था।
वह वन के फल पर जीवन निर्वाह करता था।
देश में एक बार अकाल पड़ा।
पण्डितों ने राजा को परामर्श दिया
यदि वह तपस्वी राजधानी में लाया जाये
तो खूब वर्षा होगी।
किन्तु उसे लाने में बड़ी कठिनाई थी,
परन्तु कुछ नवयुवतियाँ इस काम के लिए आगे आयीं,
उन्होंने कहा : "हम किसी प्रकार उसे लायेंगी।
वाद्ययन्त्र और नाना प्रकार के मिष्टान्न के साथ
वे वन को गयीं।
वे गाने और नाचने लगीं,
मिष्टान्न को वृक्ष से लटका दिया।
उनके मधुर स्वर तपस्वी को कर्णगोचर हुए,
वह नवयुवतियों के पास आया,
मिष्टान्न खाये,
नवयुवतियों के प्रति आकर्षित हुआ।
नवयुवतियों ने कहा : "हे तपस्वी ! हमारे नगर को चलिए।
हम आपकी सेवा करेंगी।"
तपस्वी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की।
और राजधानी में चला आया।
तब खूब वर्षा हुई।
राजा ने उसका आदर-सत्कार किया,
उसका वैराग्य शनैः-शनैः क्षीण होता गया,
उसे अपने पतन का पता लग गया।
उसने सोचा यह संग-दोष के कारण है।
किसी को बिना कुछ कहे,
वह तत्काल रात्रि में वन को चला गया,
वहाँ वह पुनः तप करने में संलग्न हो गया
और अपनी पूर्व-स्थिति प्राप्त कर ली।

धर्मग्रन्थों से सब-कुछ सुलभ

श्रीमद्भागवत का श्रद्धापूर्वक पाठ
आपको भक्ति और वैराग्य प्रदान करता है।
विष्णुपुराण का मनन,
सद्वस्तु के अनुसन्धान का अधिकारी बनाता है।
श्रीमद्रामायण का पवित्रतापूर्वक पाठ
सन्तति और सम्पत्ति का प्रदायक है।
महाभारत का निष्ठापूर्वक स्वाध्याय

सभी पापों को नष्ट कर पवित्र बनाता है।
स्वाध्याय से क्या कुछ सम्भव नहीं है?

वेद गुरु के समान हैं,

वेद, पुराण और काव्य
वे दिव्य जीवन यापन का आदेश देते
वे तर्क अथवा अनुरोध नहीं करते।
पुराण सन्मित्र के समान हैं,
वे सत्कर्म करने पर बल देते हैं,
इसके लिए वे विभिन्न प्रकार के तर्क उपस्थित करते हैं
और सुरुचिपूर्ण कथाओं के दृष्टान्त देते हैं।
काव्य तो श्रद्धालु पत्नी के समान हैं,
वे आपके हृदय को जीत लेते हैं
और दिव्य जीवन की ओर आपको आकर्षित करते हैं।
उनमें से हर एक का अपना-अपना विशिष्ट स्थान है,
और विशेष स्वभाव के अनुकूल है।

१०. साधु-संन्यासी तथा सामाजिक पुनरुत्थान

साधु तथा संन्यासी जगत्-विधान के केन्द्र हैं। वे ही सबसे उपयुक्त अधिकारी हैं जो कि विश्व में शान्ति तथा समता को रख सकें। वे ही वास्तविक निमित्त हैं जिनके द्वारा आक्रमणकारी राष्ट्रों को एकता के सूत्र में सम्बद्ध किया जा सकता है। वास्तविक साधु तथा संन्यासी, जिनका लक्ष्य विश्व-बन्धुत्व है, अपने जीवन के सभी स्तरों में महान् अनुभवों से हो कर गुजरते हैं। साधु

अथवा संन्यासी का जीवन सबसे अधिक कष्टकर होता है। यह दोनों ओर धार रखने वाली तलवार के समान है। यदि साधु पूर्णतः सदाचारमय तथा शुद्ध जीवन नहीं बिताता है, तो वह भ्रष्ट हो जाता है।

आज कल हम ऐसे लोगों को पाते हैं जो गैरिक वस्त्र धारण कर साधु बनने का स्वाँग भरते हैं; परन्तु अपने दुराचरण के कारण समस्त संन्यासी-जगत् पर लांछन लगाते हैं। वे शाश्वत तथा शास्त्र-निर्धारित नियमों की नितान्त अवहेलना करते हैं। संसार के लोग उनकी उग्र आलोचना करते हैं। इस तरह लोग फिर समस्त संन्यासियों की निन्दा करते हैं।

ऐसे स्वाँगों तथा कुकृत्यों को रोकने के लिए, साधु-संन्यासियों को मानव-जाति के उपदेशक के रूप में लाने के लिए तथा उनके गत सम्मान को पूर्ववत् बनाने के लिए योग्य संस्थाओं के रूप में इन साधुओं तथा संन्यासियों का संगठित होना अत्यन्त आवश्यक है।

समस्त संसार के कल्याण के लिए सच्चे संन्यासियों तथा साधुओं का पालन तथा अनुशासन अत्यन्त ही आवश्यक है।

ऐसे अधिवेशन, सम्मेलन, सभा इत्यादि को हिन्दू-धर्म के साधुओं एवं संन्यासियों में ही सीमित नहीं रहना चाहिए, वरन् संसार के सभी धर्मों-ईसाई, इस्लाम, सिक्ख धर्म के प्रचारकों, फकीरों तथा साधुओं को भी इसमें शामिल करना चाहिए। सारे धर्मों का मूल एक ही है। सारे धर्मों का मौलिक अधिष्ठान तथा मौलिक उद्देश्य एक ही है। जिन लोगों ने संसार की आसक्तियों का त्याग किया है तथा सनातन सत्य की खोज में अपने जीवन को अर्पित किया है, उनके व्यवहार में विभेद नहीं होना चाहिए।

संसार के सभी स्थानों के साधुओं में पूर्ण संगठन से साधु-समाज को लाभ होगा। इस तरह समस्त संसार की उन्नति हो सकती है। यह मठ, चर्च, अन्य धार्मिक संस्थाएँ तथा उनके प्रधानों में भी मेल होना सम्भव है। सब धर्मों के प्रधानों को एक-दूसरे के साथ हाथ मिला कर चलना होगा। उनको इस संगठन के कार्य-व्यापार में ठोस सम्मतियाँ प्रदान करनी होंगी।

साधुओं का संगठन

यह समय की माँग है। यदि साधुओं तथा संन्यासियों का पूर्ण संगठन हो जाये, तो इससे बहुत लाभ होगा। आप नया युग, नयी संस्कृति का निर्माण कर सकेंगे।

संगठन के लिए तो सभी पुकार रहे हैं। भारत का हर एक गृहस्थ इसकी बात करता है, पर हम संगठन करें कैसे ? यही समस्या है। यही प्रश्न है।

साधुओं का समाज जटिल तथा विषम सम्प्रदायों के द्वारा बना है। इसमें बहुत से पन्थ तथा सम्प्रदाय हैं; जैसे वैरागी, कबीर पन्थ, दादू पन्थ, गोरखनाथ सम्प्रदाय, निर्मल, उदासी, दशनाम संन्यासी जो शंकर के अनुयायी हैं, श्री रामकृष्ण मिशन के संन्यासी, निरंजनी अखाड़े के संन्यासी, नागा आदि।

ऋषिकेश साधुओं तथा संन्यासियों का घर है। गंगा के किनारे इस चित्ताकर्षक मनोरम स्थल को साधुओं ने तपश्चर्या तथा ध्यान के लिए चुना है। आध्यात्मिक स्पन्दनों से यह स्थल पूर्ण है। प्राचीन ऋषियों ने इस स्थल पर रह कर तपस्या की है। हिमालय में उत्तरकाशी तथा हरिद्वार आदि केन्द्र हैं जहाँ बहुत से संन्यासी रहते हैं। यहाँ पर दो मुख्य क्षेत्र हैं जो साधुओं को मुफ्त भोजन देते हैं। जहाँ-कहीं भी भोजन की मुफ्त व्यवस्था हो, वहाँ सभी प्रकार के लोग संन्यास का रंगीन-वस्त्र पहन कर आ जुटते हैं। इस प्रकार सामाजिक बुराई घुस जाती है तथा लोगों की पवित्रता बिगड़ जाती है। उपद्रवी लोग इन पवित्र स्थानों में आ कर रहने लगते हैं। वे अपने उपद्रव-कार्यों को जोरों के साथ करने लग जाते हैं।

साधु सम्प्रदाय के प्रधानों में संगठन के लिए काफी उत्सुकता होनी चाहिए; तभी यह काम सुचारुरूपेण चल सकता है। उन्हें एक-साथ बैठ कर मतभेद मिटा कर पूरे हृदय के साथ यह कार्य करना चाहिए। यह बहुत ही कठिन काम है। पूर्ण संगठन लाने में काफी समय लग जायेगा।

सारे मण्डलेश्वर, मठों के प्रधान, धार्मिक संस्थाओं के प्रधान, सभी ख्याति-प्राप्त संन्यासी तथा साधुओं को इस कार्य के लिए आगे बढ़ना चाहिए। कोई भी संन्यासी अकेला इस कार्य को नहीं कर सकता। श्री शंकराचार्य को राजाओं की सहायता तथा सहयोग प्राप्त था। उन्होंने अपने प्रचार-कार्य के लिए नागाओं की सेना बनायी थी। अतः इस कार्य के लिए भी मनुष्य-शक्ति, अर्थ-शक्ति तथा स्वयंसेवकों की सेना की आवश्यकता है।

आज संन्यासियों के भीतर बहुत से पाशवी तत्त्व रंगीन वस्त्र में घुस आये हैं। उनको निर्दयतापूर्वक अलग करना होगा। वे बहुत उपद्रव करते हैं। संगठनों को इन लोगों के द्वारा बहुत-सी बाधाएँ प्राप्त होंगी। उनको इस विरोध का सामना करने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। केवल जोरदार भाषणों के द्वारा ही साधुओं का संगठन नहीं हो सकता। हमें मजबूत, अथक काम करने वाले बुद्धिमान् निष्काम्य सेवकों की आवश्यकता है। हमें उदार-हृदय सज्जनों की भी सहायता चाहिए। तभी हम इस कार्य में सफल हो सकते हैं।

अब समय आ गया है। इस कार्य को शीघ्र ही हाथ में ले लेना चाहिए। सारे धार्मिक प्रधान सहायता करें; तभी सुचारुरूपेण लोक-संग्रह किया जा सकेगा। तभी हम इस जगत् में वास्तविक धार्मिक क्रान्ति ला सकते हैं।

संन्यासियों के लिए कर्तव्य

समाज के रूप में संन्यासियों तथा साधुओं के लिए एक सार्वभौमिक कर्तव्य है जिसकी पूर्ति के लिए ही उनका अस्तित्व है। वे इस भूमि की आध्यात्मिकता के संरक्षक हैं। मानवता की प्रगति तथा पूर्णता में उनका महत्त्वपूर्ण हाथ है। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही उनका अस्तित्व है। इसीलिए संन्यासी लोग संसार से अपने को अलग रखते हैं। इसीलिए वे लोग संयम में कुशल होते हैं; परन्तु भाग्यवश हम लोगों ने पार्थक्य को स्थायी बना डाला है तथा बहुत हद तक साधु-समाज अपने को अन्य मानव-जाति से अलग मानता हुआ संघर्षात्मक जीवन-यापन करता है।

दूसरों के साथ अपना सम्पर्क हटा लेने के कारण वे अपना कर्तव्य भी भूल चुके हैं। अन्य तीन आश्रमों के लिए प्रेरक तथा उपदेशक बनने का जो उनका पवित्र कर्तव्य है, उसी की वे लोग

अब अवहेलना करने लगे हैं। हम संन्यासियों को एक बार फिर बद्ध-परिकर हो कर राष्ट्रीय जीवन में अपने निर्धारित कार्य को पूरा करना चाहिए। हमको संगठित हो कर एक संस्था के रूप में परिणत होना चाहिए। इस संस्था का आदर्श है रुधिर एवं संघर्ष में चिरकाल से सने हुए इस संसार में भ्रातृत्व एवं शान्ति के नवयुग के आवाहनार्थ निःस्वार्थ रूप से पूरे हृदय से संलग्न होना है।

नयी दुनिया के पुनर्निर्माण-कार्य में मानव जाति के प्रत्येक अंग को अपना-अपना हाथ बंटाना है। यदि नयी सभ्यता को स्थायी बनाना है, महत्तर युगों की प्रस्तावना के रूप में लाना है, तो उसको आध्यात्मिक तत्त्वों के शाश्वत मूल्य पर आधारित होना होगा। नयी मानवता के लिए भौतिक तथा आध्यात्मिक आधार को प्रस्तुत करने का कार्य संसार के साधुओं तथा संन्यासियों का है।

आने वाली सन्तति को आध्यात्मिक बनाने का उत्तरदायित्व साधुओं तथा संन्यासियों का है। यह उन पर ही पूरी तरह निर्भर करता है। इस भूमि की महिमामय परम्परा को बनाये रखने के लिए तथा समाजोपकारी संस्थाओं के रूप में अपने सम्मान्य स्थान को कायम रखने के लिए उनको ऐसा करना है।

नैतिक तथा आध्यात्मिक मामलों में पथ-प्रदर्शन के लिए सामान्य जनता सदा से ही साधुओं तथा संन्यासियों का मुँह ताकती आयी है। अतः हमको आदर्श जीवन के द्वारा अपने कार्य में संलग्न होना है। देश के सारे साधुओं को संघठित संस्था के रूप में लाने के लिए सबको पूरे उत्साह के साथ कार्य करना चाहिए। तभी हमको इसमें पूरी सफलता मिल सकती है। हम लोगों के सामने जो महत्तर कार्य है, उसको दृष्टि में रखते हुए भारत के सारे तीर्थ-स्थानों में हम साधुओं को सर्वशक्तिमान् प्रभु में पूरी श्रद्धा रख कर पूरी सच्चाई के साथ इस कार्य को आरम्भ करना चाहिए।

संसार के साधुओं तथा महात्माओं के बृहत् संगठन की ओर यह संगठन प्रारम्भिक तैयारी के रूप में होगा। एक बार पुनः भारत को राजा भरत के पुनीत भारतवर्ष के रूप में परिणत करना होगा। तब भारत माता केवल सिद्धान्ततः ही सारे जगत् की जननी नहीं बनेगी, वरन् यथार्थतः वह सारे जगत् की जननी होगी। इस ईश्वरीय कार्य में सफल होने का एकमेव साधन है- निष्काम्य संगठन।

इस संगठन का प्रारम्भिक कार्य होना चाहिए अपने को उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के योग्य सक्षम एवं अधिकारी बनाना। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम संघ की एकत्र संख्या का हिसाब ले लेना होगा। जिस प्रकार महाभारत से पहले सेनाओं की संख्या ली गयी थी, उसी प्रकार हमको भी अपनी शक्ति का हिसाब रखना होगा; क्योंकि हम सत्त्व तथा शुभ शक्ति के द्योतक हैं। इस सत्त्व तथा शुभ का काम है संसार को आसुरी शक्तियों से मुक्त करना तथा रखना।

कृतसंन्यासी तथा समाज-सेवा

हर एक छात्रावास में साधुओं तथा संन्यासियों को सदा रहने के लिए आमन्त्रित करना चाहिए। साधु प्रतिदिन विद्यार्थियों को सदाचार तथा आत्मोन्नति के पाठों को दे। साथ-ही-साथ उनको ध्यान तथा उपासना का व्यावहारिक शिक्षण भी प्रदान करे। वह उनको भगवद्गीता, रामायण, भागवत तथा उपनिषदों का ज्ञान प्रदान करे। तभी वे समुचित रूप से ढाले जा सकते हैं तथा

उनके आचरण शुद्ध हो सकेंगे। आज के विद्यार्थियों की दशा दयनीय है। वे ईश्वर तथा धार्मिक ग्रन्थों के प्रति अपनी श्रद्धा खो चुके हैं। वे अधार्मिक बन गये हैं। शिक्षण-संस्थाओं को चलाने वाली कार्यकारिणी सभाओं के प्रधान जनों को चाहिए कि वे संन्यासियों के साथ अपना सम्पर्क स्थापित करें तथा अपनी संस्थाओं में संन्यासियों को धार्मिक उपदेशक के रूप में रख कर अपनी सन्तति को आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने का सुअवसर प्रदान करें।

सप्ताह में एक बार अवश्य साधु अथवा संन्यासी को सरकारी जेल में पधारने के लिए आमन्त्रित करना चाहिए। वे कैदियों के द्वारा कीर्तन तथा प्रार्थना करायेंगे और नैतिक उपदेशों के द्वारा उनको अच्छी आत्माओं में परिणत करेंगे। अज्ञान के कारण ही लोग चोरी तथा अन्य अपराध करते हैं। यदि उचित शिक्षा दी जाये तथा उनके अपराध को दूर कर दिया जाये, तो न अपराध ही रहेंगे और न कारावास ही। निश्चय ही तब इस पृथ्वी पर स्वर्ग का साम्राज्य हो जायेगा। क्या इस ओर मुक्त कैदी समिति अथवा अन्य संस्थाएँ ध्यान न देंगी?

यदि कोई संन्यासी उस शहर में रहता है जहाँ पर अस्पताल है, तो उसे नित्यप्रति रोगियों से मिलने तथा उनमें उत्साह भरने का सुअवसर देना चाहिए। वह उनकी शीघ्र रोग-मुक्ति के लिए प्रार्थना करेंगे तथा उनसे भी भजन, कीर्तन तथा ध्यान आदि करायेंगे। साथ-ही-साथ उनको आत्मा के अनामय तथा अमर स्वरूप का ज्ञान देंगे जो उनके शरीरों का अन्तर्वासी है।

यदि उपर्युक्त सम्मतियों को कार्यान्वित किया जाये, तो बहुत अच्छी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। आध्यात्मिक उन्नति होना आज की दुनिया के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि उचित अवसर दिया जाये, तो निष्काम सेवा करने के लिए शिक्षित संन्यासियों का समुदाय अपने कुटीरों से बाहर आ कर इस व्यस्त दुनिया में प्रवेश करेगा। सामाजिक कल्याण में ऐसी भद्र संस्थाओं की महत्ता कितनी है– इससे संसार को अवगत होना चाहिए।

११. चयनिका

सत्संग क्या है ?

१. ब्रह्म में संस्थित होना ही वास्तविक सत्संग है। ज्ञानियों की संगति भी सत्संग है। ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों का स्वाध्याय भी सत्संग है। सत्संग से हृदय का तम दूर होता, सन्मार्ग मिलता तथा ज्ञान-सूर्य प्रकाशित होता है।

२. ज्ञानियों की संगति सत्संग है। साधु, सन्त, महात्मा, योगी तथा संन्यासियों की संगति में रहिए, उनके अमूल्य उपदेशों को श्रवण कीजिए और उनका अक्षरशः पालन कीजिए। यही सत्संग है।

ईश्वर और सन्त

३. परमात्मा ही महान् कल्मषहारी हैं। सन्त भी महान् कल्मषहारी हैं।

४. अपरिहार्य आवश्यकता होने पर भगवान् ही साधु-सन्तों के रूप में प्रकट होते हैं।

५. भगवान् साधु-सन्तों के द्वारा ही अपना कार्य सम्पादित करते हैं।

६. भगवान् अपने पूर्ण वैभव, असीम शक्ति, ज्ञान तथा आनन्द के साथ सन्त में प्रकट होते हैं।

७. सन्त जन भगवान् के हृदय और भगवान् सन्तों के हृदय हैं।

८. सन्तों के सम्पर्क में आना तथा उनके सत्संग से लाभ उठाना अतीव दुष्कर है। भगवत्कृपा से ही उनके दर्शन और सत्संग प्राप्त होते हैं।

९. सन्तों के द्वारा ही ईश्वरीय कृपा कार्य करती है।

सन्तों की महिमा

१०. सन्त जन धर्म के जीवन्त प्रतीक हैं और मानवता के सच्चे हितैषी।

११. सन्त, महात्मा अथवा योगी तो चुम्बक हैं। वे शक्ति और ज्ञान के केन्द्र हैं।

१२. जगत् के आश्रयदाता सन्त ही हैं। वे अजस्र प्रेरणा के स्रोत हैं। उनके माध्यम से ही असंस्कृत लोगों में दैवी कृपा का संचार होता है।

१३. सन्त वह लवण है जिससे समाज क्षय और पतन से सुरक्षित रहता है।

१४. इस उद्दाम संसार-सागर में सन्त ही प्रकाश स्तम्भ हैं जो अनेकों प्राणियों के जीवन-पोत को दुर्घटना से बचाते हैं।

१५. आत्म-साक्षात्कार-प्राप्त सन्त सुख, आनन्द और प्रकाश के स्रोत हैं। उनका सान्निध्य प्राप्त कर आत्म-विकास कीजिए। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी सेवा कीजिए।

१६. सन्त आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत हैं। बड़ी विनम्रता और श्रद्धा के साथ उनके पास जाइए। वे आपको दिव्य ज्ञान प्रदान करेंगे।

१७. सन्तों से ज्ञान सीखिए। वे आपके रक्षक हैं। उन्हें ही सन्त मानिए जिनमें दैवी सम्पद् हो।

सत्संग के लाभ

१८. सन्त-महात्मा तथा गुरु का सत्संग शीघ्र आध्यात्मिक प्रगति प्राप्त करने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है।

१९. अपवित्र एवं दूषित संस्कारों को पूर्णतः विनष्ट करने तथा संसारी लोगों के मन को सन्मार्ग की ओर मोड़ने के लिए सत्संग एक सुगम तथा शीघ्रतम साधन है।

२०. सत्संग मन को उन्नत करता तथा उसे सत्त्व से आपूरित करता है। वह मन के कुविचारों को नष्ट कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराता है।

२१. सांसारिक विकारों से पूर्ण यह मन सत्संग के बिना ईश्वरोन्मुख नहीं हो सकता।

२२. सत्संग विवेक को जाग्रत करता है। सत्संग के बिना वैराग्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

२३. सत्संग अज्ञान-तिमिर को दूर करता और सांसारिक भोगों के प्रति मन में वैराग्य उत्पन्न करता है। अज्ञान रूपी मेघ को दूर करने के लिए सत्संग सूर्य के समान है। वह दिव्य जीवन यापन करने और ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ आस्था रखने को बाध्य करता है।

२४. सत्संग से साधकों में सत्त्वगुण का उल्लेखनीय गति से विकास होता है। सत्संग साधक को अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत करने तथा अवांछनीय दुर्गुणों का उन्मूलन करने के लिए शक्ति प्रदान करता है।

२५. मोक्ष की प्राप्ति में सत्संग प्रचुर सहायता प्रदान करता है। सत्संग के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। यह ताप-त्रय को नष्ट करता है। माया तथा उपद्रवी मन पर विजय पाने का यह अचूक साधन है।

२६. माया के प्रलोभनों तथा आक्रमणों से युवक साधकों की रक्षा करने के लिए सत्संग अजेय दुर्ग है।

२७. जिस प्रकार डूबते हुए व्यक्ति के लिए नाव ही सबसे बड़ा सहारा है, उसी प्रकार संसार-सागर में निमग्न हुए लोगों के लिए सन्त जन ही एकमात्र आश्रय हैं।

२८. मोक्ष-द्वार पर सत्संग एक प्रहरी है। यदि आप इससे मित्रता गाँठ लेते हैं, तो यह आपको अपने अन्य तीन मित्रों-विचार, शान्ति और सन्तोष से परिचय करा देगा और आप शीघ्र तथा सरलता से आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर सकेंगे।

२९. सत्संग का फल अमोघ है।

३०. जीवन की सभी व्याधियों के लिए सत्संग रामबाण औषधि है।

३१. सत्संग के समान प्रेरक, उत्कर्षकारक, सान्त्वनादायक और आनन्दप्रद अन्य कुछ भी नहीं है।

३२. मनुष्य को पवित्र तथा विभासित करने वाली वस्तुओं में सत्संग सबसे श्रेष्ठ है।

३३. किसी साम्राज्य पर शासन करने की अपेक्षा एक क्षण का सत्संग अधिक श्रेष्ठ है।

३४. सन्तों का संग कीजिए। वे आपके घावों को भर देंगे, आपमें नवजीवन का संचार करेंगे, आपको नवयौवन प्रदान करेंगे और शान्ति तथा आनन्द का मार्ग दिखायेंगे।

३५. सन्त-महात्माओं, सिद्धों तथा ऋषियों के उपदेशों का पालन कीजिए। उनकी आत्मा के साथ एकस्वर हो जाइए।

३६. जो व्यक्ति अपने से बड़ों का तथा सन्तों का सम्मान करता है और श्रद्धा-भक्ति के साथ उनको साष्टांग प्रणाम करता है, उसकी आयु, कीर्ति, सुख, शक्ति और ज्ञान में वृद्धि होती है।

सत्संग से परिवर्तन

३७. मानव-मन बड़ा ही संवेदनशील है। यदि आप इसे कुसंग में रखेंगे, तो यह कुवृत्तियों को ग्रहण करेगा और यदि आप इसे सत्संग में रखेंगे, तो यह दिव्य गुणों को ग्रहण करेगा।

३८. प्रोज्ज्वल आदर्श अपने अनुरूप बनने की प्रेरणा देते हैं। यदि मन का नियन्त्रण न किया गया, तो बुरे आदर्शों का वैसा ही प्रभाव पड़ता है।

३९. यदि आप किसी सन्त के पास जायेंगे, तो आपमें स्वभावतः शान्ति और पवित्रता की भावना उदित होगी।

४०. जैसे अग्नि के सन्निकट जाने से शीत, भय तथा अन्धकार जाता रहता है, उसी प्रकार सन्त के सान्निध्य में रहने से दुर्बलता, सांसारिकता और अज्ञानता जाती रहती है।

४१. गंगा तो केवल उनके ही पापों को दूर करती है जो उसके जल से मार्जन करते हैं; किन्तु सन्त तो अपने पास आते ही मनुष्य को पवित्र बना देते हैं।

४२. सन्तों के दृष्टिपातमात्र से पापी पवित्र हो जाते हैं।

४३. सन्तों का दर्शन सुखकारी है, उनकी संगति सदा शान्तिदायक है और उनके साथ वार्तालाप करना आनन्ददायक है।

४४. सन्त का स्मरण करते ही सभी बुरी कामनाएँ दूर हो जाती हैं।

४५. सन्त पुरुषों का चिन्तन करते समय मन उनके गुणों के अनुरूप आकार धारण कर लेता है और इस भाँति पवित्र बन जाता है।

४६. सन्तों की जीवन-लीला का चिन्तन सत्संग के तुल्य है। उनके उपदेशों का स्वाध्याय भी सत्संग के समान ही है।

४७. सन्तों के जीवन का चिन्तन, उनका सत्संग तथा उनके आशीर्वाद प्राप्त करने का सौभाग्य होने से मनुष्य में शुद्धता, प्रेरणा और दैवी चेतना का आविर्भाव होता है।

४८. सत्संग सच्चे साधकों के जीवन में महान् सुपरिवर्तन लाता है। यह उन्हें उत्कृष्टता, शुचिता तथा आध्यात्मिकता के उन्नत शिखर पर पहुँचा देता है। कट्टर भौतिकवादियों पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

४९. अल्पकाल के सत्संग से भी ईश्वर में विश्वास दृढ़ हो जाता है।

५०. सन्त मौन रहते हैं। वे बहुत ही थोड़े शब्द बोलते हैं; किन्तु इन शब्दों का अमित प्रभाव होता है। जो सन्त तथा उनके सन्देश को समझते हैं, उन्हें ये शब्द नवजीवन और आनन्द प्रदान करते हैं। सन्त भले ही मुख से कुछ न कहें, फिर भी उनकी उपस्थिति में साधकों की सभी शंकाओं का निवारण हो जाता है।

५१. सत्संग से प्रभु में प्रेम उत्पन्न होता है। प्रभु का प्रेम मोक्ष प्रदान करता है।

५२. एक पल का सत्संग भी जीवन-सागर को पार करने के लिए नौका का काम देता है।

सत्संग से लाभ प्राप्त करने की विधि

५३. ज्ञान-शिखर पर आरूढ़ होने के लिए संघर्षरत आत्माओं की सहायता को जीवन्मुक्त सदा ही उद्यत रहते हैं। इस संसार में यही उनका काम है। साधकों को चाहिए कि उनसे सहायता लें और अपनी मनोवृत्ति ग्रहणशील बनायें।

५४. सत्संग से लाभ उठाने के लिए आप अपने को योग्य पात्र बनायें। सन्त के पास पूर्व-निर्णीत विचार ले कर न जायें। उन्मुक्त तथा ग्रहणशील मन से जायें। बिना किसी आशा के ही जायें। विनम्र एवं श्रद्धा भाव से उनके पास जायें। उनकी जो बात रुचिकर हो, उसे ग्रहण करें। यदि उनके कुछ उपदेश आपको नहीं जँचते, तो उनके विषय में अपना कोई मत शीघ्र न बनाइए। यदि आप उन उपदेशों का पसन्द नहीं करते, तो उन्हें ग्रहण न कीजिए। जो दूसरों के लिए उपयुक्त है, हो सकता है कि वह आपके लिए उपयुक्त न हो; किन्तु मूलभूत सिद्धान्तों में कोई मतभेद नहीं हो सकेगा।

५५. सत्संग के द्वारा संसार-सागर को पार करने तथा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की सच्ची कामना होनी चाहिए।

५६. सन्तों के पास जाने पर केवल कुतूहलवश प्रश्न नहीं करने चाहिए। विनम्र भाव से उनके निकट बैठिए। उनको ध्यान से देखिए। बिना किसी पूर्वापेक्षा के उनकी बातें सुनिए। केवल ऐसे ही प्रश्न कीजिए जिनकी आपको वास्तव में जिज्ञासा हो।

५७. केवल योग्य प्रश्न ही उनसे पूछें। उन्हें राजनीति अथवा सार्वजनिक विवाद के मामलों में न घसीटें।

५८. सन्त के सान्निध्य में ध्यान कीजिए। आपको आन्तरिक प्रकाश प्राप्त होगा जिससे आपकी समस्त शंकाएँ दूर हो जायेंगी।

५९. केवल बुद्धिमान् व्यक्ति ही सत्संग से सत्य को समझ कर उसकी अनुभूति कर सकता है।

सन्तों की सेवा

६०. ईश्वर तक पहुँचने का सरलतम उपाय है सन्तों के संग निवास तथा उनके उपदेशों का परिपालन।

६१. सन्तों की वाणी से हृदय में स्फूर्ति आती है और अज्ञानजन्य शंकाएँ दूर होती हैं। उनके उपदेशों से यथासम्भव लाभ उठाने का प्रयत्न करें।

६२. सन्त-कृपा के बिना दिव्य जीवन का रहस्य समझा नहीं जा सकता। उनके उपदेशों का ईमानदारी के साथ अभ्यास करके तथा उनकी व्यक्तिगत सेवा करके आप उनकी कृपा प्राप्त कर सकते हैं।

६३. सन्तों की सेवा ही मोक्ष का द्वार है।

६४. सन्त की सेवा का सौभाग्य प्राप्त करना बहुत ही दुर्लभ है।

६५. मोक्ष की प्राप्ति के निकट पहुँचने पर ही साधक को सत्संग सुलभ होता है।

६६. सन्तों में अहैतुकी भक्ति रखने वाले व्यक्ति के हृदय में भगवान् विराजमान रहते हैं।

सन्तों के जीवन-चरित्र

६७. सन्तों की जीवन-गाथाएँ मोक्ष-मार्ग में ध्रुवदर्शक-यन्त्र का काम देती हैं।

६८. जिस ग्रन्थ में सन्त की जीवन-लीलाओं का वर्णन है, वह आपकी अमूल्य निधि तथा सतत मित्र है।

६९. सन्तों की जीवन-गाथाओं के निरन्तर पाठ से आप भी साधु जीवन यापन कर सकेंगे। आप उनके गुणों को आत्मसात् कर लेंगे।

७०. आपके जीवन का गठन शनैः-शनैः आध्यात्मिक पथ पर होने लगेगा और आप उनकी जीवन-गाथाओं से प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

७१. भगवत्-साक्षात्कार के लिए उद्यमशील बनने के लिए आपमें आन्तरिक लगन होगी।

७२. महात्माओं और सन्तों का चिन्तन तथा ध्यान करें। इससे आपको प्रेरणा मिलेगी। वे मृत्यु को नहीं प्राप्त हुए। वे तो आज पूर्व की अपेक्षा अधिक जीवन्त हैं।

७३. कुसंगति से सावधान रहें। शराबियों की संगति में पड़ कर संयमी व्यक्ति भी शराब पीने लग जाता है।

७४. जिससे मन में कुविचार उत्पन्न हो, वह कुसंग है।

७५. कुसंग बड़ा भयंकर है। उससे काम, क्रोध, घृणा तथा भ्रम की उत्पत्ति होती है और स्मृति तथा विवेक-शक्ति नष्ट होती है।

७६. कामी पुरुषों की संगति सांसारिक बन्धन का मार्ग प्रशस्त करती है।

१२. सत्संग के माहात्म्य पर हिन्दू-धर्मग्रन्थ

योगवासिष्ठ

वसिष्ठ महर्षि श्री राम से कहते हैं: "इस दुस्तर संसार-सागर को पार करने के लिए सत्संग ही नौका है। पल-भर का सत्संग भी परम कल्याणकारी होता है। महात्माओं के दर्शनमात्र से सारे पाप धुल जाते हैं और हृदय प्रफुल्लित होता है। पुण्यात्माओं की सत्संगति से विवेक-पुष्प प्रस्फुटित होता है। सत्संग सारी आपत्तियों को दूर करता तथा अज्ञान-तरु को नष्ट करता है। सन्त जन जिज्ञासुओं के लिए आचरणीय नियमों का विधान करते तथा जीवन के विहित मार्ग का उपदेश करते हैं। पुण्यात्माओं की संगति सन्मार्ग को आलोकित करती तथा हृदय-देश के तम को विदूरित करती है। सत्संग माया तथा दूषित मन पर विजय पाने का अमोघ साधन है।

"सन्तोष, सत्संग, विचार और शान्ति-ये आत्म-साक्षात्कार के चार साधन हैं। जो इस साधन-चतुष्टय से सम्पन्न हैं, उन्होंने संसार-सागर को पार कर लिया है। सन्तोष सर्वोत्तम लाभ है, सत्संग सर्वोत्तम साधन है, विचार सच्चा ज्ञान है और शान्ति ही सर्वोत्तम आनन्द है। सभी समृद्धि और सफलताएँ उसकी दासी हैं, जिसमें ये साधन-चतुष्टय विद्यमान हैं। इनमें से एक गुण के विकसित होने पर अनियन्त्रित मन के दोष क्षीण होने लगते हैं। सद्गुणों के विकास से दुर्गुणों का दमन और उन्मूलन होता है। इसके विपरीत एक भी दुर्गुण को प्रश्रय देने से दुर्गुणों की वृद्धि और सद्गुणों का दमन होता है। हमारा मन भूलों का वन है जिसमें कामना की प्रबल धारा पाप और पुण्य दो किनारों के बीच वेग से बहती है।

"इसलिए हे राम ! अपने मन पर वीरतापूर्वक नियन्त्रण कीजिए तथा अपने जीवन में आचरण के लिए उक्त चारों साधनों के विकास के लिए पुरुषार्थ कीजिए।

"जो व्यक्ति सतत आत्म-विचार करता है, वह संसार के कष्ट और ताप से पीड़ित नहीं होता। उसे समदृष्टि तथा मन का सन्तुलन प्राप्त होता है, वह सदा शान्त और प्रसन्न रहता है। माया उसके पास फटक नहीं सकती। वह अमर एवं स्वयंप्रकाश आत्मा के ध्यान में सतत निमग्न रहता है।

"जब तक मनुष्य को आत्मज्ञान प्राप्त न हो जाये, तब तक उसे आत्मज्ञानपरक पुस्तकों का स्वाध्याय, सत्संग, साधन-चतुष्टय और सदाचार का विकास तथा इन्द्रियों का नियन्त्रण करना चाहिए और आत्म-विचार में सतत संलग्न रहना चाहिए।"

श्रीमद्भागवत

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं: "मैं योग, सांख्य, धर्म-पालन, स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्टापूर्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, मन्त्र, वेद, तीर्थ, यम-नियम आदि से वैसी सुगमतापूर्वक प्राप्त नहीं होता जैसा कि सत्संग से, जो कि सभी आसक्तियों को नष्ट कर डालता है।

"सत्संग के द्वारा दैत्य, असुर, पशु, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक और विद्याधर तथा मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री, चाण्डाल आदि रजोगुणी तथा तमोगुणी प्रकृति के बहुत से प्राणियों ने मेरा परम पद प्राप्त किया है। त्वष्टा ऋषि-पुत्र वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय-दानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रज की गोपियों, यक्षपत्नियों और दूसरे लोगों ने भी न तो वेद का स्वाध्याय किया, न ज्ञान के लिए महापुरुषों की विधिवत् सेवा ही की, न तो व्रत-उपवास किये और न तपस्या ही; किन्तु सत्संग के प्रभाव से वे मुझे प्राप्त हो गये।

"योग, सांख्य, दान, व्रत, तपस्या, यज्ञ, श्रुतियों की व्याख्या, स्वाध्याय तथा संन्यास आदि बड़े-बड़े साधनों के द्वारा भी लोग मुझे प्राप्त नहीं कर पाते; किन्तु गोपियाँ, गायें, वृक्ष, मृग, नाग तथा मूढ़ बुद्धि के जीव आदि सत्संग से विकसित प्रेमपूर्ण भाव के द्वारा मुझे सहज ही प्राप्त कर कृतकृत्य हो गये। जिस समय अक्रूर जी मुझे बलराम जी के साथ मथुरा ले जा रहे थे, उस समय गोपियों को, जो कि प्रगाढ़ प्रेम के कारण अपना हृदय मुझे अर्पित कर चुकी थीं, मेरे वियोग के कारण मर्मान्तक पीड़ा पहुँची। मेरे अतिरिक्त उन्हें अन्य कुछ भी आनन्दप्रद या रुचिकर न था। गोपियों का प्रियतम मैं जब वृन्दावन में उनके साथ था, तब जो रात्रियाँ उन्होंने पल के समान बिता दीं, वे ही रात्रियाँ मेरे वियोग में उनके लिए युग के समान हो गयीं। जैसे ऋषिगण समाधि में और नदियाँ समुद्र में मिल कर नाम-रूप को खो देती हैं, वैसे ही वे गोपियाँ परम प्रेम के द्वारा मुझमें इतना तन्मय हो रही थीं कि उन्हें देह-गेह की, अपने सगे-सम्बन्धी की तथा अपने पास-पड़ोस की सुध-बुध ही न रह गयी थी।

"उनमें से बहुत-सी गोपियाँ मेरे वास्तविक स्वरूप, परब्रह्म को न जान कर मुझे अपना प्रियतम यार ही समझती थीं; किन्तु उन्होंने सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में केवल सत्संग के प्रभाव से मुझ परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया। उद्धव ! इसलिए तुम विधि-निषेध, प्रवृत्ति-निवृत्ति तथा सुनने-योग्य तथा सुने हुए विषय का परित्याग कर नीति-नियमों से ऊपर उठ जाओ। श्रुति-स्मृति की, विधि-निषेध की चिन्ता न करो। समस्त प्राणियों के आत्म-स्वरूप मुझ एक की ही शरण पूर्ण हृदय तथा परम प्रेम से ग्रहण करो। तुम्हें किसी से भय नहीं होगा।"

१३. सर्व देव-ऋषि-भक्त-कीर्तन-माला

थार अथवा मिट्ट्र

भजो राधे कृष्ण भजो राधे श्याम
भजो राधे कृष्ण भजो राधे श्याम

सार्वजनिक कीर्तन

१. भजो प्रभु ईसा भजो प्रभु मोहम्मद
भजो खुदा खुदा भजो अल्लाह अल्लाह

२. भजो प्रभु बुद्ध भजो तथागत
भजो अर्हत् भजो बोधिसत्त्व

३. भजो प्रभु कन्फ्यूशियस भजो प्रभु शिन्तो
भजो प्रभु महावीर भजो प्रभु तीर्थंकर

४. भजो वाहि गुरु भजो नानक देव
भजो गुरु अर्जुन भजो गुरुगोविन्द

५. भजो सन्त यूसुफ भजो सन्त फ्रांसिस
भजो सन्त मैथ्यूज भजो शम्सतबरेज

प्राचीन ऋषिगण

१. भजो नर ऋषि भजो नारायण ऋषि
भजो पद्मभवं भजो वसिष्ठ मुनि

२ भजो शक्ति पाराशर भजो व्यास भगवान्
भजो शुक महर्षि भजो गोविन्दपाद

३. भजो शंकराचार्य भजो पद्मपाद
भजो हस्तामलक भजो त्रोटकाचार्य
भजो सुरेश्वराचार्य भजो सद्गुरुदेव

४. भजो अत्रि भृगु भजो उत्स वसिष्ठ
भजो गौतम कश्यप भजो दुर्वासा अंगिरस

५. भजो सनक सनन्दन भजो सनत्कुमार
भजो सनत्सुजात भजो अष्टावक्र

६ भजो याज्ञवल्क्य भजो उद्दालक
भजो अगस्त्य भजो विश्वामित्र

७. भजो कपिल मुनि भजो पतंजलि ऋषि
भजो वाल्मीकि ऋषि भजो प्रभु मनु
भजो ऋषि कणाद भजो ऋषि जैमिनि

८. भजो प्रजापति भजो भरद्वाज
भजो प्रभु यम भजो नचिकेता

अतीत के सन्तगण

१. भजो शंकराचार्य भजो रामानुजाचार्य
भजो मध्वाचार्यीवर भजो वल्लभाचार्य
भजो निम्बार्काचार्य भजो गोरखनाथ

२.	भजो सदाशिव ब्रह्म	भजो विद्यारण्य
	भजो मधुसूदन स्वामी	भजो श्रीधर स्वामी
३.	भजो गौरांग महाप्रभु	भजो रामप्रसाद
	भजो रामानन्द	भजो समर्थ रामदास
४.	भजो थयुमानवर	भजो पत्तिनाथ
	भजो अप्पर सुन्दरार	भजो मानिकवाचकर
५.	भजो तिरुवल्लुवर	भजो सुन्दरमूर्ति
	भजो ज्ञानसंबन्धर	भजो कन्नप नयनार
६.	भजो त्यागराज	भजो पुरन्दरदास
	भजो वेमन्ना	भजो पोतन्ना
७.	भजो रामलिंग स्वामी	भजो धन्ना भगत
	भजो तोतापुरी	भजो रामकृष्ण
८.	भजो विवेकानन्द	भजो रामतीर्थ
	भजो साई बाबा	भजो उपासनी बाबा
९.	भजो गोरा कुम्हार	भजो सेना नाई
	भजो चोखा मेला	भजो रविदास
१०.	भजो कनकदास	भजो निवृत्तिनाथ
	भजो ज्ञानदेव निजी	भजो सोपानदेव
११.	भजो मुक्ताबाई	भजो एकनाथ
	भजो नामदेव	भजो तुकाराम
१२.	भजो रघुनाथ राय	भजो मुकुन्दराय
	भजो त्रिलिंग स्वामी	भजो पवहारी बाबा
१३.	भजो काली कमली वाला	भजो विजयदास
	भजो तुलसीदास	भजो कबीरदास
	भजो दामा जी	भजो सूरदास
१४.	भजो नरसी मेहता	भजो दादू कवि
	भजो नन्दनार	भजो पोताना

भक्तगण

१. भजो प्रह्लाद भजो नारद ऋषि
भजो पराशर भजो पुण्डरीक

२. भजो व्यास भगवान् भजो अम्बरीष
भजो शुक मुनि भजो शौनक

३. भजो भीष्मपितामह भजो रुक्मांगद
भजो विभीषण भजो हनुमान्

४ भजो लक्ष्मण भजो भरत
भजो शत्रुघ्न भजो जटायु

५. भजो गौरांग भजो ध्रुव

६. भजो चैतन्य देव भजो नित्यानन्द
भजो ध्रुव उद्धव भजो अक्रूर सुदामा

चिरंजीवि

१. भजो अश्वत्थामा भजो काकभुशुण्डि
भजो मार्कण्डेय भजो राजा बलि

२. भजो व्यास भगवान् भजो नारद ऋषि
भजो हनुमान् भजो जाम्बवान्

ऐतिहासिक महापुरुष

१. भजो राजा जनक भजो हरिश्चन्द्र
भजो राजा युधिष्ठिर भजो राजा गोपीचन्द

२. भजो राजा भर्तृहरि भजो शिखिध्वज
भजो राजा भरत भजो राजा नल

३. भजो राजा अर्जुन भजो नकुल सहदेव
भजो कर्ण शिवि भजो दधीचि

४ भजो विदुर भजो कालिदास

भजो शिवाजी भजो अशोक

महिला सन्त

१. भजो कौशल्या देवी भजो देवकी देवी
भजो यशोदा माता भजो देवहूति

२. भजो सावित्री भजो नलयिनी
भजो अहल्या भजो अनसूया

३. भजो शवरी भजो द्रौपदी
भजो सत्यभामा भजो मदालसा

४. भजो चुडाला रानी भजो सुलभादेवी
भजो मैत्रेयी भजो अरुन्धती

५. भजो मुक्ता बाई भजो सक्कु बाई
भजो मीरा बाई भजो मैत्रायणि

६. भजो कुन्ती तारा भजो मन्दोदरी
भजो अण्डाल भजो अन्वयार

हिन्दू देवता

१. भजो विष्णु भगवान् भजो पद्मनाभ
भजो प्रजापति भजो प्रभु शिव

२. भजो प्रभु कृष्ण भजो प्रभु राम
भजो प्रभु गणेश भजो कार्तिकेय

३. भजो प्रभु हरि भजो मत्स्य रूप
भजो कूर्म रूप भजो वाराह

४. भजो नरसिंह मूर्ति भजो प्रभु वामन
भजो परशुराम भजो बलराम

५ भजो कल्कि अवतार भजो दत्तात्रेय
भजो दक्षिणामूर्ति भजो हरिहर पुत्र
भजो द्वारकाधीश भजो पण्ढरीनाथ

* * *

१. भजो विराट् पुरुष
भजो हिरण्यगर्भ
भजो ईश महेश
भजो अन्तरिक्ष

२. भजो बृहस्पति
भजो अर्यमा
भजो वायु भगवान्
भजो त्रिशंकु

३. भजो इन्द्र वह्नि
भजो पितृपति
भजो निऋति
भजो वरुण यम

४. भजो कुबेर ईश
भजो मित्र देव
भजो विद्याधर
भजो यक्ष किन्नर

५. भजो गन्धर्व
भजो सिद्ध चारण
भजो गुह्यक
भजो विनायक

६. भजो अष्टवसु
भजो नवग्रह
भजो राहु केतु
भजो सूर्य सोम

७. भजो कुज बुध
भजो बृहस्पति
भजो शुक्राचार्य
भजो शनिश्चर

हिन्दू देवियाँ

१. भजो लक्ष्मी देवी
भजो वाणी सरस्वती
भजो पार्वती
भजो उमा गौरी
भजो गायत्री देवी
भजो सन्ध्या देवता

२. भजो दक्षयानी
भजो दुर्गादेवी
भजो चण्डी चामुण्डी
भजो महिषासुरमर्दिनी

३. भजो काली माता
भजो वल्ली दैवयानै
भजो सीता जानकी
भजो राधा रुक्मिणी

४. भजो गंगारानी
भजो कांची कामाक्षी
भजो काशी विशालाक्षी
भजो मदुरा मीनाक्षी

५. भजो कात्यायनी
भजो महामाया
भजो जगदम्बिका
भजो अन्नपूर्णा
भजो भूमि देवी

१४. स्वाध्याय

सद्ग्रन्थों का अध्ययन ही स्वाध्याय है जैसे गीता, उपनिषद्, रामायण, भागवत आदि। एकाग्र मन से इन सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए। जो-कुछ आपने अध्ययन किया है, उसे समझें और अपने दैनिक जीवन में आचरण करने का प्रयत्न करें। यदि आपने सद्ग्रन्थों के उपदेशानुसार आचरण नहीं किया, तो आपके अध्ययन से कोई लाभ नहीं है। नाम-जप, मन्त्र का पुनः-पुनः स्मरण स्वाध्याय के ही अन्तर्गत है। सद्ग्रन्थों का सतत अध्ययन तथा अपने दैनिक जीवन में उनका आचरण करने से प्रभु-सामीप्य प्राप्त होता है।

शास्त्रों तथा मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा लिखित ग्रन्थों का नित्य-अध्ययन ही स्वाध्याय है। पावन ग्रन्थों का पारायण अथवा नित्य-पाठ ही स्वाध्याय है। यह राजयौगिक नियम का चतुर्थ अंग है। 'मैं कौन हूँ' अथवा आत्म-तत्त्व का विचार भी स्वाध्याय ही है। स्वाध्याय एक प्रकार से अप्रत्यक्ष सत्संग है।

यदि आपको जीवित महात्माओं का सत्संग न प्राप्त हो, तो महात्माओं के द्वारा लिखे हुए सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए। यह परोक्ष सत्संग ही है। यदि आप विवेकचूडामणि का अध्ययन करें, तो आपको उस समय भगवान् शंकराचार्य के सत्संग का लाभ होगा। इसी भाँति यदि आप योगवासिष्ठ का स्वाध्याय करते हैं, तो आपको महर्षि वसिष्ठ का सत्संग प्राप्त होगा।

सायंकाल को चार-पाँच व्यक्ति किसी मन्दिर या शान्त स्थान में एकत्र हो कर गीता, उपनिषद्, रामायण या भागवत का पाठ करें! इससे मन शनैः-शनैः शुद्ध होगा और आध्यात्मिक पथ में रुचि होगी। महिलाओं को भी ऐसा ही करना चाहिए।

दैनिक स्वाध्याय के लिए सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ

भक्तों को ऐसे ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए, जिनमें भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया गया हो, भगवान् के ऐश्वर्य, माधुर्य और लीलाओं का वर्णन हो, सन्तों की गाथाएँ हों तथा भक्ति के विकास के लिए साधनाएँ बतलायी गयी हों। ऐसे ग्रन्थों के स्वाध्याय से ही भक्ति का विकास होता है।

भक्ति के विकास में निम्नांकित ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं : रामायण, श्रीमद्भागवत, नारायणीयम्, गीता, विष्णुपुराण, अध्यात्म रामायण, तुलसी रामायण (रामचरितमानस), विष्णुसहस्रनाम, शाण्डिल्य सूत्र, शिवपुराण, देवी भागवत, नारद पांचरात्र, भक्तियोग साधना, भक्तियोग सार, भक्ति और संकीर्तन, भक्तिरसामृतम्, अलवारों तथा नयनारों के गीत, थेवारम्, थिरुवचकम्, दासबोध, तुकाराम के अभंग, ज्ञानेश्वरी गीता, भक्ति रसायन, भक्तिरसामृतसिन्धु आदि।

मन का धोखा

यह ठीक है कि आप भौतिक पदार्थों के लिए लालायित हैं; किन्तु फिर भी आप ध्यान तथा गीता, उपनिषद्, विवेकचूडामणि आदि के स्वाध्याय में एक दिन भी न चूँकें। ये सभी ग्रन्थ आध्यात्मिक रत्नों से भरपूर हैं। एक श्लोक से ही आपको शान्ति मिल जायेगी।

हिमा विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निस्स्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।

इसे आप कभी न भूलें।

मन आपको धोखा देता है। आप सोचते हैं: 'जब मेरे पास अपनी दो गायें होंगी, जब मसूरी में मेरा अपना एक शानदार बँगला होगा, तभी मैं सुखी होऊँगा।' ये निरर्थक विचार हैं। हमें तो नचिकेता-जैसे व्यक्ति की आवश्यकता है जिसमें देश, काल और कारण से परे की ही वस्तु की कामना थी। जनक तथा चुडाला के समान संसार में रह कर भी आपमें प्रबल पिपासा, ध्यान तथा त्याग की भावना होनी चाहिए। विवेकचूडामणि, आत्म-बोध, पंचदशी तथा विचार-सागर का नित्य ही पाठ करना चाहिए। ये सभी ग्रन्थ आत्मोन्नति में सहायक हैं। योगवासिष्ठ तो अद्वैत वेदान्त का अति सुन्दर विशाल ग्रन्थ है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से मनुष्य को शान्ति मिलती है। 'निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।' ऐसे ही व्यक्ति को भगवत्कृपा प्राप्त होती है।

स्वाध्याय से लाभ

स्वाध्याय नियमित करना चाहिए। रामायण, भागवत, योगवासिष्ठ आदि स्वाध्याय के लिए उत्तम ग्रन्थ हैं। यदि आप गीता के भावों का चिन्तन करें और उनमें अपने मन को लीन कर दें, तो यह भी एक प्रकार की निम्न स्तर की समाधि है। गीता स्वाध्याय के लिए अनुपम ग्रन्थ है। इसमें सभी वेदों का सार और योगों का तत्त्व निहित है। अपनी सुविधा के अनुसार आधे घण्टे से तीन घण्टे तक प्रतिदिन इस कार्य में लगना चाहिए। धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय क्रियायोग अथवा नियम है। इससे हृदय शुद्ध और मन उन्नत विचारों से पूर्ण होता है।

स्वाध्याय हमारे मन को प्रेरणा देता है और आध्यात्मिकता के उच्च शिखर तक पहुँचा देता है। यह शंकाओं का समाधान करता, अपवित्र विचारों का मूलोच्छेदन करता तथा मन में नयी आध्यात्मिक धारा प्रवाहित करता है। इससे मन का विक्षेप दूर होता है, एकाग्रता में सहायता मिलती है और निम्न स्तर की सविकल्प समाधि का निर्माण होता है। स्वाध्याय हमारे मन के लिए विचार-भूमि तैयार करता है। धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करते समय आप उन ग्रन्थों के प्रणेता सिद्ध महापुरुषों के सम्पर्क में आते हैं और उनसे प्रेरित हो कर तन्मयता प्राप्त करते हैं।

महात्माओं का साक्षात् सत्संग न प्राप्त होने की दशा में स्वाध्याय ही शंकाओं का निवारण करता है। स्वाध्याय डगमगाती श्रद्धा को स्थिर बनाता, मोक्ष की पिपासा को तीव्र बनाता तथा प्रोत्साहन और प्रकाश प्रदान करता है। वह ऐसे महात्माओं का विवरण प्रस्तुत करता है जिन्होंने

आत्म-मार्ग प्रशस्त किया, कठिनाइयों तथा बाधाओं का सफलतापूर्वक सामना कर उन्हें दूर किया और इस भाँति वह नवीन आशा और नव-बल का संचार कर प्रफुल्लित करता है। वह मन को सत्त्व से आपूरित करता, उसमें प्रेरणा भरता और उसे उन्नत बनाता है। वह ध्यान और धारणा में सहायता पहुँचाता है। वह नयी सात्त्विक प्रणाली निर्मित करता है और मन को इस नयी प्रणाली में संचालित करता है।

महात्माओं के ग्रन्थों में दिये गये उपदेशों को चरितार्थ करने से शारीरिक क्लेश का शमन होता, आहत आत्मा के घाव भरते तथा जीवन के अज्ञान-जन्य सभी प्रकार के दोषों से रक्षा होती है। आध्यात्मिक ग्रन्थ सभी परेशानियों में सान्त्वना देने वाले साथी का, सभी कठिनाइयों में आदर्श शिक्षक का, अज्ञान-निशा में पथ-प्रदर्शक प्रकाश का, बुराइयों में रामबाण औषधि का काम करता है और मनुष्य के भाग्य का निर्माण करता है।

साधु-सन्तों, दार्शनिकों और तत्त्वज्ञानियों के ग्रन्थों को आत्मसात् कर ज्ञान प्राप्त कीजिए। इस ज्ञानार्जन से विज्ञान के सभी रहस्यों को जानिए, वस्तुओं के प्रकृत स्वरूप को पहचानिए, अपने निज-व्यक्तित्व को प्रभु के स्वरूप में तदाकार कीजिए। ज्ञान ही शक्ति और आनन्द के प्राचुर्य की कुंजी है। ज्ञान असंख्य तापों को दूर करता, असंख्य पापों को विनष्ट करता, अविद्या-ग्रन्थि का उच्छेदन करता और शान्ति, सौमनस्य तथा अशेष पूर्णता प्रदान करता है।

परिशिष्ट

१. सत्संग तथा गुरु-भक्ति का महत्त्व

'सत्संग' तथा 'गुरु-भक्ति' दोनों विषय परस्पर सम्बद्ध हैं; क्योंकि आध्यात्मिक गुरु के प्रति भक्ति ही, एक प्रकार से, सत्संग का विशिष्ट रूप-विशिष्ट तथा घनीभूत रूप है।

महात्मा के साथ सत्संग तथा गुरुदेव के साथ सत्संग

पवित्र महात्माओं का संग ही सत्संग है। सत्संग किसी सन्त की, किसी पुण्यात्मा, महात्मा अथवा किसी भगवद्भक्त की संगति है। यह सत्संग का सामान्य अर्थ है और इन मायनों में सत्संग क्षणिक भी हो सकता है। उदाहरण-स्वरूप यात्री यात्रा के लिए आते हैं। कुछ लोग अवकाश के समय तीर्थ-यात्रा करने निकलते हैं। उस समय वे इन तीर्थ-स्थानों में सन्त-महात्माओं की उपस्थिति का लाभ उठा कर उनके दर्शन करते और उनके सत्संग से कृतार्थ होते हैं। यह क्षणिक सत्संग हुआ; परन्तु जब कोई साधक किसी सन्त के पास सत्संगार्थ उपस्थित होता है और कालान्तर में उस सन्त के साथ स्थाई सम्बन्ध में बंध जाता है, उस सन्त को अपने TH आध्यात्मिक मार्ग-दर्शक गुरु के रूप में अपनाता है, तब यह सत्संग का विशेष रूप है। यह स्थाई होता है। अब वह साधक उस सन्त को एक पुण्यात्मा तथा परम भागवत के रूप में मानने और सम्मान देने के साथ-ही-साथ उसके प्रति विशेष श्रद्धा प्रदर्शित करता है। उसका यह भाव पूजा-अभ्यर्थना का रूप ले लेता है। यह गुरु-पूजा, विशेषकर भारत में, ईश्वर-पूजा के समकक्ष मानी जाती है; क्योंकि जिस व्यक्ति की सहायता से साधक मोक्ष-लाभ करना चाहता है, उसके प्रति ईश्वरत्व की भावना

का होना परम आवश्यक है। यह उस सन्त (गुरु) और साधक (शिष्य) के पारस्परिक सम्बन्ध का बहुत ही गहन एवं महत्त्वपूर्ण अंग है। अतः जब यह सम्बन्ध किसी सत्पुरुष के साथ स्थापित होता है, तभी साधक उत्कट भक्ति, पूर्ण आत्मार्पण और आत्म-त्याग की उदात्त भावना से अनुप्राणित हो कर सत्संग करता है, वह अपने निज-अस्तित्व को, व्यक्तित्व को खो देने का प्रयत्न करता है।

गुण-ग्राहकता से ही सत्संग में लाभ

किसी सन्त के पास जाने पर इस भावना का-गुण-ग्राहकता का-होना आवश्यक है, तभी वह सन्त के सान्निध्य का लाभ उठा सकता है। यदि आप किसी सन्त के पास जाते हैं और यदि उनके ज्ञान से कुछ लाभ उठाना चाहते हैं, उनसे कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको ग्रहणशील होना होगा। यह ग्रहणशीलता आध्यात्मिक जगत् में ही नहीं, व्यावहारिक जगत् में भी उतनी ही आवश्यक है। कल्पना कीजिए कि आप किसी बड़े विद्वान् से कुछ सीखना चाहते हैं। यदि आप यह कहें कि 'मैं तो सब-कुछ जानता ही हूँ, तब स्वभावतः ही आप उस विद्वान् की बातों पर ध्यान नहीं देंगे। इस भाँति यदि आप किसी प्रकाण्ड विद्वान् के पास भी जायें, तो भी आप जिन विचारों के साथ उसके पास गये थे, उन्हीं विचारों के साथ वापस आ जायेंगे। आप जैसे पहले थे वैसे ही बने रहेंगे। उस सन्त में जिन गुणों की राशि है, उसमें से आप किंचिन्मात्र भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे; क्योंकि आप यह अनुभव ही नहीं करेंगे कि 'मुझमें कुछ कमी है, कुछ अभाव है। उस सन्त में वे गुण प्रचुर मात्रा में हैं; अतः मैं उसके पास जाऊँ।' ज्ञानी के पास जाने वाले व्यक्ति के मन में जब तक यह भावना नहीं होती, तब तक वह गुण ग्रहण नहीं कर सकता। यदि दूसरा व्यक्ति उदारतापूर्वक ज्ञानदान की भावना से देने को उत्सुक भी है, तो भी वह व्यक्ति खाली हाथ ही वापस आ जाता है, उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता, क्योंकि उसमें पात्रता जो नहीं है। जब सामान्य लोगों से मिलने में गुण-ग्राहकता की इतनी आवश्यकता है तो ऐसे सन्त से, जिसे आप गुरु-रूप में वरण करना चाहते हैं, मिलने पर इस गुण की कितनी अधिक आवश्यकता होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। सन्त के साथ सत्संग अन्ततः शिष्यत्व का रूप धारण करता है-सन्त गुरु बनता है और साधक गुरु के पादपद्म में बैठने वाला शिष्य।

गुरु-शिष्य के सम्बन्ध का आधार

हिन्दू-अध्यात्म-जगत् में गुरु-शिष्य-सम्बन्ध जो इतना महत्त्व रखता है, आखिर उसका आधार क्या है? मैं आपको स्मरण रखने के लिए तीन शब्द बतलाता हूँ। यदि आप इन्हें स्मरण रखेंगे, तो आप आध्यात्मिक जीवन के इस महत्त्वपूर्ण पहलू में निहित आध्यात्मिक मनोविज्ञान की यत्किंचित् झाँकी पा सकेंगे। उनमें से प्रथम शब्द है 'उपनिषद्', द्वितीय है 'उपासना' तथा तृतीय है 'सत्संग'।

उपनिषद् शब्द की निष्पत्ति कैसे हुई है? इसका अर्थ है 'पास बैठना - ऐसे व्यक्ति के पास बैठना जो कि ज्ञानी है, जिससे हम वह ज्ञान प्राप्त कर सकें जिससे उसका जीवन ज्योतित हुआ है। अतः इसका अर्थ हुआ-पूर्ण पुरुष अथवा ऋषियों के पास बैठना और उनसे विनम्रतापूर्वक वह ज्ञान प्राप्त करना। यह वह ज्ञान है जिसे जिज्ञासुओं ने भक्ति, ग्रहणशीलता और विनम्रता के साथ ऋषियों के चरणों में बैठ कर प्राप्त किया था और ज्ञानवान् बने थे। उपनिषद् का भाव यही है कि जो ऋषि के पास बैठ कर सीखा जाये।

उपासना का अर्थ भी प्रायः यही है। जहाँ उपनिषद् शब्द ज्ञान-प्राप्ति की विधि के रहस्य की कुंजी बतलाता है, ज्ञानार्जन की प्रक्रिया बतलाता है वहाँ उपासना शब्द से ईश्वर की भक्ति या ईश्वर-पूजा का भाव व्यक्त होता है। उपासना का अर्थ है भगवद्-पूजा और संस्कृत में इसका शाब्दिक अर्थ है 'निकट बैठना'। इसका भाव हुआ-पास बैठना, अपने इष्टदेव के निकट बैठना। यह उपासक को उसके आराध्य देव के साथ, जिससे वह ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, निकट-सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता प्रकट करता है।

सत्संग शब्द भी थोड़े-बहुत रूप में यही अर्थ व्यक्त करता है। इसका अर्थ है-सत्य के साथ संग और उसी प्रकार उनके साथ संग जिन्होंने परम सत्य के साथ अपनी चेतना को एकाकार कर दिया है अथवा जो स्वयं सद्रूप बन चुके हैं। '**ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति**' - ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। अतः साधु-सन्त और ज्ञानी पुरुष भी सत्य के मूर्त रूप, सत्य के ही प्रकट रूप हैं जिसमें उनकी चेतना सदा प्रतिष्ठित रहती है। अतः जब आप सत्संग में सम्मिलित होते हैं, तो इसका अर्थ है कि आप उस समय परब्रह्म के पास निवास करते हैं, जिसका रूप वह सन्त है।

उपनिषद्, उपासना तथा सत्संग-ये तीन ही हमारे आध्यात्मिक जीवन के प्रमुख आधार रहे हैं। अपनी आध्यात्मिक संस्कृति के मूल स्रोत में, इसके सर्वोच्च शिखर पर हम उपनिषद् को पाते हैं। प्रेम के क्षेत्र में हमारे पास उपासना है। सत्संग आज के युग में, इस कलियुग में आध्यात्मिक साधना का एक विशेष रूप है। कहते हैं कि कलियुग में सबसे महान् तथा संसार-सागर को सन्तरण करने का यदि कोई अचूक साधन है; तो वह है सत्संग। सत्संग को, विशेषकर इस कलियुग में, बड़ा महत्त्व दिया गया है, क्योंकि इस दृश्य जगत्-रूप सागर से जीव को पार ले जाने के लिए एकमात्र यही नौका है। कहते हैं कि नाम और सत्संग ही दो विषय हैं जिन पर मानव की आशाएँ टिकी हैं। इस कलियुग में साधक की आशाएँ उसके आध्यात्मिक जीवन की आधारशिलाएँ इन नाम और सत्संग-रूप दो स्तम्भों पर टिकी हुई हैं। उपनिषद् से आरम्भ हो कर बाद में उपासना का रूप लेती हुई यह साधना सांसारिक जीवन-क्षेत्र में सत्संग के रूप में ही विद्यमान है। सत्य-लोक की ओर प्रयाण करने में साधकों के लिए सत्संग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

उचित दृष्टिकोण का महत्त्व

अब प्रश्न यह है कि जब आध्यात्मिक चेतना के प्रकटीकरण के लिए सत्संग ही सर्वोच्च कारण है, तो गुरु के पास जाने वाले प्रत्येक साधक को एक-सा ही प्रकाश, एक-से ही प्रकाश के लक्षण तथा योग-पथ में साधना का एक-सा ही फल क्यों नहीं प्राप्त होता? भगवान् कृष्ण ने द्वापर युग में अवतीर्ण हो कर अपनी अलौकिक लीलाएँ कीं। वे परात्पर ब्रह्म के पूर्ण अवतार थे। जो लोग उनके साथ रहते थे, उनसे मिलते-जुलते थे, उनसे बातें करते थे, उनसे सभी प्रकार के व्यवहार करते थे, उनमें से कुछ लोग ऐसे थे जो उनके दिव्य स्वरूप को भली-भाँति जानते थे और वे ही भाग्यशाली बने। उनमें से कुछ लोग ऐसे भी थे जिनमें कोई भी परिवर्तन न आया। वे सब उस युद्ध में मारे गये, जिसकी रचना भगवान् कृष्ण ने स्वयं की थी। वह अद्‌भुत वस्तु क्या है? एक शब्द में कहें, तो वह है 'दृष्टिकोण।' जीव का दृष्टिकोण ही वह विषय है जो यह निर्णय करता है कि साधक का सत्संग आत्मानुभूति में सार्थक हुआ अथवा बंजरभूमि-सा निरर्थक। जब

कौरव भगवान् कृष्ण के पास गये, उनका दृष्टिकोण दोष-दृष्टि का था। भगवान् के गुणों की ओर से उन्होंने अपनी दृष्टि फेर ली थी। उनके प्रतीयमान दोषों की ओर ही उनकी दृष्टि लगी हुई थी। भगवान् अपनी योग-माया के आश्रय से सब क्रियाएँ करते हैं और यह माया अचिन्त्य तथा अनिर्वचनीय प्रकृति है। यदि हमारा ध्यान प्रकृति पर केन्द्रित हो, तो आत्म-ज्योति हमसे ओझल रहती है। प्रभु ईसा का जीवन बहुत ही चमत्कारपूर्ण था। बहुत ही थोड़े लोग ऐसे थे जो उनके गुणों को जान पाये तथा अमर हो गये और वे असंख्य प्राणी विस्मृति के गर्त में विलीन हो गये जिन्होंने उनको शूली पर चढ़वाया। उन लोगों ने उनमें एक राजनीतिक क्रान्तिकारी का रूप देखा, एक जादू वाले को पाया, शैतान का साथी समझा। यही दृष्टिकोण था उन असंख्य लोगों का, अतः उन्हें ईसा का सत्संग-लाभ न हुआ। उनके लिए सत्संग था ही नहीं। इस भाँति प्राणी का दृष्टिकोण ही सत्संग से होने वाले लाभ का निर्णय करता है। हमारे सामने दुर्योधन के दृष्टिकोण का ऐतिहासिक उदाहरण है। महर्षि व्यास ने महाभारत में एक उदाहरण द्वारा दुर्योधन और युधिष्ठिर के व्यक्तित्व के गठन को व्यक्त किया है।

युधिष्ठिर और दुर्योधन का ऐतिहासिक उदाहरण

भगवान् कृष्ण ने दुर्योधन और युधिष्ठिर को एक काम सौंपा। युधिष्ठिर को काम सौंपते हुए उन्होंने कहा कि 'तुम जाओ और एक ऐसे व्यक्ति को ढूँढ़ लाने की कोशिश करो जो बिलकुल दुष्ट हो, जिसमें गुणों का सर्वथा अभाव हो और जो दोषों से पूर्ण हो।' उन्होंने दुर्योधन को अलग बुला कर आदेश दिया कि 'तुम ऐसा व्यक्ति खोज कर लाने का प्रयत्न करो जो सद्गुणों से पूर्ण हो, जिसमें एक भी दोष न हो।' वे दोनों अपने काम पर चले गये और कुछ दिनों के बाद दोनों ही वापस आये तथा श्रीकृष्ण से अलग-अलग मिले। श्रीकृष्ण ने प्रत्येक से यही प्रश्न किया : "तुम वापस आ गये? क्या जिस व्यक्ति को खोजने गये थे, उसे ले आये? वह कहाँ है?" अब उनके उत्तर सुनिए। दुर्योधन कहता है: "मैंने ऐसे व्यक्ति की, जो सद्गुणों से सम्पन्न हो और जिसमें दुर्गुणों का सर्वथा अभाव हो, खोजने का अथक परिश्रम किया, सर्वत्र ही उसे छान मारा; किन्तु ऐसा व्यक्ति कहीं भी न मिल सका जो सर्वथा निर्दोष हो । प्रत्येक व्यक्ति में दोष भरे हुए हैं। यदि किसी व्यक्ति में एक गुण है, तो उसमें दरजनों दोष भी हैं। पूरी खोज-बीन के बाद मैंने पाया कि यदि कोई व्यक्ति ऐसा है जिसमें कोई भी दोष न हो, तो वह मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं। मैं ही वह व्यक्ति हूँ। अतः मैं आपके पास आया हूँ। अब आप जैसा चाहें, मेरे साथ करें।" श्रीकृष्ण मुस्कराये और कहने लगे-"बहुत ही अच्छा हुआ। सर्वगुण-सम्पन्न तथा दोष से सर्वथा मुक्त व्यक्ति के दर्शन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।"

युधिष्ठिर के आने पर श्रीकृष्ण पूछते हैं: "तुम्हारा व्यक्ति कहाँ है?" युधिष्ठिर ने जो उत्तर दिया वह अमर हो गया। उसमें मानव की अभिव्यक्ति है। वह कहते हैं: "हे प्रभु! निकृष्टतम पापियों में भी, संसार जिन व्यक्तियों को सबसे अधिक बुरा बताता है, उनमें भी मैंने अनुकरणीय गुण पाये, उनमें भी श्रेष्ठ लक्षण पाये। अतः यथाशक्य प्रयत्न करने पर भी मैं ऐसा व्यक्ति पाने में सफल न हो सका जो दोषों से ही पूर्ण हो। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ सद्गुण होते ही हैं। दोष से पूर्ण व्यक्ति मिलना असम्भव है। मैंने अपना विश्लेषण किया और पाया कि मैं दोषों से, अपूर्णताओं से तथा पापों से इतना भरा हुआ हूँ कि मैं आपके समक्ष उपस्थित करने के लिए अपने से अधिक उपयुक्त व्यक्ति नहीं पा सका। केवल मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसमें आपका बतलाया हुआ विवरण पूर्ण रूप से घटित होता है। अतः मैंने अपने-आपको आपके सम्मुख प्रस्तुत किया है।"

दोष-दृष्टि का सदुपयोग और दुरुपयोग

दृष्टिकोण के ये उपर्युक्त दो रूप हैं। युधिष्ठिर का दृष्टिकोण साधक का दृष्टिकोण था। उनमें दोष ढूँढ़ने की प्रवृत्ति बहिर्गामी न हो कर अन्तर्मुखी थी। दोष-दृष्टि मानव का एक भयंकर अभिशाप है। यह सार्वलौकिक है; परन्तु साधकों की एक विशेष श्रेणी है। वे बहुतों में से एक नहीं हैं, वरन् उनका वर्ग ही पृथक् है जो स्वयं को सुधारने पर बल देते हैं, संसार को सुधारने का नहीं, जो आत्म-विश्लेषण को महत्त्व देते हैं और आत्म-सुधार के लिए प्रयत्नशील हैं, संसार के विश्लेषण में नहीं पड़ते; क्योंकि इसका दोष ढूँढ़ने के लिए सहस्रों जन्म भी पर्याप्त नहीं हैं। विवेकी पुरुष के लिए तो संसार अपूर्णताओं का आगार है। पूर्णता तो केवल ब्रह्म में है। प्रकृति के कार्य में पूर्णता कहाँ! प्रकृति तो ब्रह्म के विपरीत है। यदि ब्रह्म सर्वतोभावेन पूर्ण है, तो प्रकृति अपूर्णताओं की खान है। यदि ब्रह्म प्रकाश है, तो प्रकृति अन्धकार। प्रकृति का जगत् तो अपूर्ण है, सदोष है; अतः यदि हम इसके दोष निकालने के चक्कर में पड़े, तो इसके लिए सहस्रों जन्म भी पर्याप्त न होंगे। अतः इस शक्ति का उपयोग अपने ऊपर ही करना चाहिए। तभी आपके जीवन में आकांक्षित परिवर्तन घटित होगा। आपको अपना जीवन सुधारने तथा उसे परिष्कृत बनाने के लिए असीम क्षेत्र खुला हुआ मिलेगा। किन्तु यदि इस शक्ति का उपयोग बाहर किया गया, तो आपके लिए यह समस्त जगत् दोषों का शिक्षक बन जायेगा; क्योंकि जिस विषय पर आप मन को सदा एकाग्र करते हैं, वही आपके व्यक्तित्व का आधार बन जाता है। जिस विषय का काल्पनिक चित्र आपके मन में होता है, आपका व्यक्तित्व उसी से पोषण प्राप्त करता, बढ़ता और उसी के अनुरूप विकसित होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। यदि आप सदा पूर्णता के विषय में, सौन्दर्य और शान्ति के विषय में चिन्तन करें तो पूर्णता, सौन्दर्य और शान्ति के अनुरूप ही आपका विकास होगा। यदि आप अपने समक्ष अपूर्णता, कुरूपता और उदासी के विचार बनाये रखें, तो आपको प्रत्येक वस्तु वैसी ही दिखायी पड़ेगी। यदि आप हिमालय की भयंकर शीत का ही चिन्तन करेंगे, तो आप बर्फ का सौन्दर्य खो देंगे। यदि राका-शशि की सुषमा का दर्शन करते समय आप चन्द्रमा के दूसरे पक्ष का, उसके घोर कालिमा-वृत्त का मन में चिन्तन करते रहें, तो आपके मन और हृदय-पट पर पूर्ण चन्द्र की आभा के स्थान में कालिमा ही रहेगी। दोष-दृष्टि की यह प्रकृति बहुत बड़ी बाधा है, क्योंकि वह साधक को उसकी निम्न प्रकृति से, दोषपूर्ण प्रकृति से सदा बाँधे रखती है और वह अपने गुरु के चरणों में भी, योग के पवित्र क्षेत्र में भी, शुद्ध आध्यात्मिक पथ में भी अपनी उस प्रकृति को ले जाता है जिसने उसे विषय-वासना-मय सदोष जीवन में बाँध रखा है और यदि ऐसा मन योग के पावन क्षेत्र में ले जाया गया, तो प्रकाश प्राप्त करने के स्थान में वह अन्धकार का आलिंगन करेगा; क्योंकि वह अपनी प्रकृति के बन्धन में बंध चुका है तथा उससे मुक्त होना नहीं चाहता और आपको मालूम है कि इसका परिणाम क्या होगा ? गुरु की ज्योति, योग का प्रदीप उसके अन्तर्थित दोष-दृष्टि-रूपी अभेद्य दीवार के कारण उसके हृदय को प्रकाशित न कर सकेगा। इस संकट से बचने के लिए ही प्राचीन काल के ऋषियों ने यह उपदेश दिया था :

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।"

(श्वेताश्वतरोपनिषद् : ६-२३)

जिस साधक की परमदेव परमेश्वर में परम भक्ति होती है तथा जिस प्रकार परमेश्वर में होती है, उसी प्रकार अपने गुरु में भी होती है, उस महात्मा-मनस्वी पुरुष के हृदय में ही शास्त्रों के रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। इसलिए इस दोष-दृष्टि की भयंकर भूल से बचने के लिए, गुरु के सन्निकट जाते समय साधक में गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा और भक्ति का होना एक अपरिहार्य पूर्वापेक्षा माना गया है। यदि यह दोष दूर कर दिया गया, यदि साधक और सिद्ध के बीच की लौह दीवार हटा दी गयी, तो शिष्य पर गुरु की कृपा प्रवाहित होने लगती है। यदि आप एक पाषाण-खण्ड को सहस्रों वर्ष तक जल में डुबोये रखें, फिर भी आप अन्त में यही देखेंगे कि वह पाषाण-खण्ड सहस्रों वर्ष पूर्व का पाषाण-खण्ड ही बना रहा। लाखों मन जल जो उस पर बह चला, उससे उसमें कुछ भी परिवर्तन घटित नहीं हुआ; क्योंकि उसने जल से अपने को पूर्णतः अभेद्य बना रखा था। साधक का भी यही स्वभाव होता है। वह अपने सीमित ज्ञान और स्वल्प व्यक्तित्व से ही सन्तुष्ट रहता है, वह अपनी राजसिक वृत्ति के कारण अपनी ही पूर्व-कल्पित भावनाओं से, अपने ही विचारों से चिपके रहना चाहता है और उसका यह स्वभाव ही सत्संग के उच्चतम सत्-दर्शन में प्रतिफलित होने में महान् बाधा है। जब तक साधक अपने पुराने स्वभाव से दृढ़तापूर्वक चिपका रहता है और अपने में परिवर्तन की आवश्यकता स्वीकार नहीं करता, तब तक उसके लिए सत्संग निष्फल ही होता है। साधक को अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होगा। उसे यह स्वीकार करना होगा कि 'मैं अल्पज्ञ हूँ, गुरुदेव मुझसे अधिक ज्ञानवान् हैं। मेरा ज्ञान स्वल्प है और जो मैं नहीं जानता हूँ, वह सन्त मुझे प्रदान करेंगे।' सत्संग के फलद होने के लिए इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाने की परम आवश्यकता है।

अहं और उसका विनाश

अब हम धर्मशास्त्रों के आध्यात्मिक ज्ञान के मूल में ही प्रवेश करते हैं। ज्ञानयोग क्या है? भक्तियोग क्या है? कर्मयोग क्या है? राजयोग क्या है? आध्यात्मिक साक्षात्कार तथा मोक्ष के इन सम्पूर्ण प्रश्नों का मूल अविद्या के सिद्धान्त में निहित है। ज्ञानी जन कहते हैं कि अज्ञान ही सबका मूल है। अब प्रश्न यह है कि जीव में यह अज्ञान किस प्रकार व्यक्त होता है? इसका उत्तर है अहंकार के रूप में। इस भाँति जीव का 'अहं' ही उसकी सारी समस्याओं का मूल कारण है; इस 'अहं' को मिटा देने पर जो अपनी पूर्ण आभा के साथ विभासित हो उठता है, वही है आपका स्वरूप, वही है सच्चिदानन्द। इस 'अहं' का विनाश ही सभी योगों का प्रमुख लक्ष्य है। मैं कब मुक्त बनूँगा? जब 'मैं' का अस्तित्व जाता रहेगा। जब अहं-भावना जाती रहती है, तब 'मैं-पन' और 'मेरा-पन' पूर्णतः विनष्ट हो जाता है और जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जिस प्राणी में 'मैं' की भावना का पूर्ण नाश हो जाता है, वह उसी क्षण कैवल्य मोक्ष प्राप्त करता है। उसे उन्नत क्षेत्र में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे सद्यः मोक्ष प्राप्त हो जाता है। आत्मज्ञान में अहं-भाव ही बाधक है और यह अहं-भाव विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। यह अज्ञान के रूप में, देहाध्यास के रूप में प्रकट होता है, 'मैं यह शरीर हूँ', 'मैं मन हूँ', 'मैं इन्द्रिय हूँ।' पूर्ण आत्मा को शरीर, प्राण, मन और इन्द्रिय समझने की गलत धारणा को अध्यास कहते हैं। अतः अपने को सर्वव्यापी परम सत् मान कर इस अध्यास को दूर कीजिए। 'मैं आत्मा हूँ' - इस विचार को अपने मन में पुनः पुनः बैठाइए। यही वेदान्त की प्रक्रिया है। अतः अध्यास-रूप में वर्तमान अपने अहं को नष्ट कीजिए।

यह अहंकार कभी-कभी राग (यह मेरा है, मम, मम इति) आदि के रूप में अभिव्यक्त होता है। राग-रूप में अभिव्यक्त इस अहंकार के उन्मूलन के लिए सन्तों ने बतलाया है कि 'प्रभु से राग कीजिए।' यह प्रेम-मार्ग है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ।।

'प्रभु आप ही मेरे सर्वस्व हैं। इस संसार की किसी भी वस्तु में मेरी आसक्ति नहीं रही। आप ही मेरे अपने हैं, मेरे निकटतम और प्रियतम हैं। आपमें मेरा मन उलझ गया है।' राग, प्रेम और स्नेह के रूप में अभिव्यक्त अहं-भाव का यही परिशोधन है।

यही नहीं, यह अहं-भाव मनुष्य के व्यक्तित्व में दूसरे रूप में- अहंकार, अभिमान, आत्म-प्रशस्ति के रूप में-भी पाया जाता है। 'मैंने वह काम किया। मैं वेदों का पण्डित हूँ। मैं उस विज्ञान में पारंगत हूँ।' यह सब उसके कुछ रूप हैं। मनुष्य हर बात में अभिमान करता है और इस भावना को प्रश्रय देता है, 'मैं ही कर्ता हूँ। मेरे पास सब-कुछ है।' इस अभिमान को नष्ट कीजिए। 'मैं कुछ नहीं हूँ। मैं कुछ भी नहीं करता। सब-कुछ प्रभु ही कर रहे हैं। हरि ही करता है। प्रभु की शक्ति से ही सब-कुछ हो रहा है। मैं तो निमित्तमात्र हूँ।' भगवती गीता का कथन है, "निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।" यह कर्तापन और आसक्ति से रहित हो कर कर्म करने का निर्देश देता है। इसलिए प्रभु के पादपद्मों में पूर्ण आत्म-समर्पण करके यह मानते हुए कि 'मैं कर्ता नहीं हूँ, मैं तो निमित्तमात्र हूँ। सब-कुछ प्रभु ही कर रहे हैं', संसार-क्षेत्र में कर्म कीजिए। यही कर्मयोग है।

इस भाँति ज्ञानयोग अध्यास-रूप में अभिव्यक्त अहं को दूर करता है, भक्तियोग भावुकता और राग के रूप में अभिव्यक्त अहं का परिष्कार करता है और कर्मयोग अभिमान रूप में अभिव्यक्त अहं को नष्ट करता है। फिर राजयोग से क्या लाभ है? अहं की इन सभी अभिव्यक्तियों का मूल कारण है मन; अतः इस मन को ही नष्ट करना चाहिए। मन इस बाह्य धरातल पर प्रथमतः किस प्रकार प्रकट होता है? अवचेतन मन अव्यक्त संस्कारों से भरा हुआ है; अतः आप वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते हैं। फिर मन का वह प्रमुख रूप कौन-सा है जो इस बाह्य धरातल पर प्रकट होता है? वह है सचेतन मन, वृत्ति, विचार, संकल्प-विकल्प। अन्तःकरण में संस्कार-रूप में गुप्त रूप से स्थित सूक्ष्म वासना विचार के रूप में प्रकट होती है। ज्यों-ही मन में विचार उठे, उसे उखाड़ फेंको। उसे तुरन्त ही नष्ट कर दो, कुचल डालो। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' - चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। मन में उत्पन्न होने वाले सभी विचारों को पूर्णतः नष्ट कर डालो; किन्तु यह पूर्ण धारणा और गहन ध्यान से ही सम्पन्न हो सकता है। मन में नाना प्रकार के विचार उठते रहते हैं। एक-एक कर उनकी संख्या कम करते जाओ, वासना के क्षेत्र को छोटा करते जाओ और फिर उनमें से एक विचार को, प्रमुख विचार को ले लो और अन्त में उस विचार को भी त्याग दो। मन ही अध्यास, ममता, राग, अभिमान आदि अहंकार के विभिन्न रूपों के प्रकटीकरण का क्षेत्र है और यह राजयोग उस मन को पूर्ण रूप से विनष्ट करने की एक तकनीक

है। जब मन विनष्ट हो जाता है, तो अहं भी जाता रहता है। यही वास्तविक राजयोग है। आसन, प्राणायामादि तो धारणा तथा ध्यान के लिए केवल तैयारी-स्वरूप हैं।

अतः इन सभी विषयों से यह महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट होता है कि अहं ही मानव का शत्रु है। अपनी असंख्य शाखा प्रशाखाओं के साथ यह अहंकार ही मनुष्य का महान् शत्रु है। मनुष्य को अज्ञान और संसार से आबद्ध बनाये रखने वाला अन्य कुछ नहीं, केवल अहंकार है जो विभिन्न विकारों का मूल कारण है। योग की सभी शाखाओं का अन्तिम लक्ष्य इस अहंकार का मूलोच्छेदन है और यह सत्संग से ही सम्भव है। सत्संग एक अद्भुत तकनीक है और यदि साधक ने इसकी महत्ता को भली-भाँति समझ लिया है, तो सत्संग में महत्तर व्यक्तित्व के प्रभाव से अहंकार के मूलोच्छेदन की मूल प्रक्रिया स्वयमेव चालित हो जाती है। योग का अर्थ है अहंकार के सभी रूपों को पूर्णतः चकनाचूर कर उसे विदूरित करना। इस बात से परिचित यदि कोई साधक किसी गुरु के पास जाता है तो आपको मालूम है कि वह क्या करता है? वह सदा सावधान रहता है कि उसका अहं कभी अपना शिर न उठाये। वह अपने अहंकार के साथ चिपके रह कर भी गुरु के सन्निकट जाने की भयंकर भूल नहीं करता है।

एक दृष्टान्त

एक कथावाचक की कहानी आती है। वह वर्ष-भर दरबार में कथा किया करता था। एक बार राजा को भव-बन्धन से मुक्त होने की तीव्र लगन हुई। उसने सोचा कि 'यह कथावाचक मुझे भव-बन्धन से मुक्त करने में समर्थ होगा। मुझे मानसिक शान्ति नहीं है। सम्भव है, वह मुझे कुछ ज्ञान दे।' दूसरे दिन राजा ने कथावाचक से कहा: "मुझे ज्ञान चाहिए। इस भव- बन्धन से मुक्त होने का रहस्य मुझे बतलाइए।" कथावाचक भय से काँप उठा। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसे कुछ समझ में नहीं आता था कि इस विषम परिस्थिति में क्या करे। राजा ने कहा : "यदि आप मुझे संसार से मुक्त नहीं कर सकते, तो आपकी नौकरी जाती रहेगी और उसके साथ ही आपका शिर भी धड़ से अलग कर दिया जायेगा।" कथावाचक उदास मन से अपने घर आया। उसकी एक चतुर कन्या थी। सम्भवतः वह योगभ्रष्ट रही होगी। उसने अपने पिता से पूछा : "आप इतने उदास क्यों हैं?" पिता ने उत्तर दिया : "मेरी बच्ची, मेरे अन्तिम दिन निकट आ पहुँचे हैं। राजा मुझसे असम्भव काम करवाना चाहता है। वह मुझसे वह ज्ञान प्राप्त करना चाहता है जो उसे भव-बन्धन से मुक्त कर सके। मैं भला क्या जानता हूँ! मुझे स्वयं इस विषय का ज्ञान नहीं है। मैं तो केवल कथा करता हूँ और वह भी परिवार के भरण-पोषण के लिए ही। यदि मैं कल राजा को यह ज्ञान प्रदान न कर सका, तो वह मेरा गला उतरवा लेगा।" उसकी पुत्री ने आश्वासन देते हुए कहा : "आप कुछ चिन्ता न करें। राजा के पास जा कर निवेदन करें कि उन्हें उत्तर मिलेगा।" कहते हैं, डूबते को तिनके का सहारा। उस कथावाचक ने कहा : "बहुत अच्छा।" आठ-दश वर्ष की उस लड़की ने निवेदन किया कि 'कल राजमहल को जाते समय मुझे भी अपने साथ ले चलें।' दूसरे दिन पिता अपनी पुत्री के साथ राजमहल में गया। कन्या ने उनसे कहा कि वह नित्य की भाँति ही कथा आरम्भ करें। कथा प्रारम्भ करे हुए पन्दरह मिनट भी न हुए होंगे कि उच्च स्वर के रुदन से दरबार की शान्ति भंग हो गयी। सभी लोगों को आश्चर्य हुआ कि कौन रो रहा है। लड़की धाड़ मार कर रो रही थी : "मुझे छुड़ाइए, मुझे छुड़ाइए।" वह एक स्तम्भ के साथ दृढ़ता से चिपटी हुई थी। लोगों ने उसे स्तम्भ से वियुक्त करने का बहुतेरा प्रयास किया; किन्तु वे असफल रहे। वह स्तम्भ को दृढ़ता से पकड़े हुए चिल्ला रही थी : "मुझे छुड़ाइए, मुझे छुड़ाइए।" राजा को क्रोध

आया। उसने कहा : "तू कैसी नादान लड़की है? तेरा आशय क्या है? तूने स्वयं ही तो स्तम्भ को पकड़ रखा है और हम लोगों को छुड़ाने के लिए कहती है।" लड़की तुरन्त ही खिलखिला कर हँसने लगी। राजा ने पूछा : "तू क्यों हँस रही है?" लड़की ने उत्तर दिया: "मैं इसलिए हँस रही हूँ कि आप मेरे पिता जी से ठीक यही काम करवाना चाहते हैं। आपने स्वयं ही राजमहल को पकड़ रखा है। आप अपने राजमहल, अपनी विशाल सम्पत्ति और मान-मर्यादा से आसक्त हैं। जिस वस्तु को आपने स्वयं पकड़ रखा है, उससे ही अपने को मुक्त कराने के लिए आप मेरे पिता को आदेश देते हैं।" राजा को कन्या के इस उत्तर से बहुत ही सन्तोष हुआ। उसे एक शिक्षा मिली। मनुष्य को कोई दूसरा व्यक्ति मुक्त नहीं करा सकता। उसे स्वयं ही मुक्त होना है।

अहं के त्याग से ही सत्संग की सफलता

जिस वस्तु से आप आसक्त हैं, उसे आपको छोड़ना होगा। अतः यह स्वयं साधक पर निर्भर करता है कि वह अपनी उन आसक्तियों का परित्याग करे जो कि निम्न जीवन से, उसकी पुरानी असंस्कृत प्रकृति से सम्बन्धित हैं। यदि वह उस आसक्ति का त्याग करता है तो सत्संग तत्काल ही फलप्रद होने लगता है; गुरु-भक्ति उसके हृदय में प्रस्फुटित होती है। इससे पूर्व उससे गुरु-भक्ति नहीं होती, क्योंकि वह स्वयं अपने में आसक्त है, अपने ही सीमित विचारों का प्रेमी है, अपने ही तथाकथित सिद्धान्तों का आग्रही है। वहाँ कोई सिद्धान्त नहीं है। वहाँ 'तुम्हारा अपना' 'मेरा अपना' नहीं होना चाहिए। गुरुदेव के विचार ही आपके विचार हों। बाइबिल का कथन है : "अपने को रिक्त करो, मैं तुम्हें पूर्ण कर दूँगा।" इस सद्वाणी का मूलार्थ यह है कि अपने को अहं तथा उससे सम्बन्धित सभी विषयों से रिक्त करो। अहं से सम्बन्धित अन्य विषय क्या हैं? इस विषय में शास्त्रों का कथन है कि वे हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य। ये सारे विषय अहं से संलग्न हैं। अहं चक्र की धुरी है और ये सब उसके आरे। अतः सर्वप्रथम आपको अपने सिद्धान्त, अपनी निम्न प्रकृति से अपने को मुक्त करना होगा। आप कहते हैं, 'मेरी समझ में', किन्तु आपकी समझ भूल-भरी समझ है; क्योंकि यदि साधक ने ठीक-ठीक समझ लिया है, तब तो वह सन्त बन गया होता। सभी ज्ञान सद्गुरु के श्रीचरणों में अर्पित कर अपने को रिक्त बनाना चाहिए और यह कहना चाहिए कि 'मेरे लिए जो ज्ञान आवश्यक समझते हैं, उसे आप प्रदान कीजिए।' प्रत्येक व्यक्ति का अपना विचार होता है; परन्तु सज्ञान तो सद्गुरु से ही प्राप्त हो सकता है। हमें अपने अशुद्ध ज्ञान तथा अनुचित दृष्टिकोण को दूर करना चाहिए और जब तक यह अशुद्ध ज्ञान तथा अनुचित दृष्टिकोण मन में बना रहता है, तब तक उसमें शुद्ध ज्ञान तथा उचित दृष्टिकोण के अवतरण के लिए कोई भी स्थान नहीं रहता। इसीलिए कहा है : "**सत्संगत्वे निस्संगत्वम्।**" आपके मन में जो-कुछ है, उससे आपको निःसंगत्व प्राप्त करना है। अहं का त्याग बहुत ही कठिन है। मनुष्य अपने धन का, अपनी स्त्री का, अपने सांसारिक जीवन का, अपनी सम्पत्ति का, अपने घर तथा समाज का, यहाँ तक कि सर्वस्व का त्याग कर सकता है, किन्तु अपने अहं का त्याग करना उसके लिए अत्यन्त कठिन है, अतीव दुस्साध्य है; परन्तु यदि साधक सत्संग से लाभान्वित होना चाहता है, यदि वह सच्चा शिष्य बनना चाहता है और गुरु-भक्ति का विकास करना चाहता है, तो अहं का त्याग उसके लिए आवश्यक है। अहं के त्याग के अनन्तर ही सत्संग प्रतिफलित होता है, वह सक्रिय होता है और तभी साधक का सत् के साथ सम्पर्क स्थापित होने लगता है। जो व्यक्ति अपने इस अहं का परित्याग करता है, उसी को सत्संग की प्राप्ति होती है; क्योंकि अपने को यह लघु अहं, यह क्षुद्र व्यक्तित्व मान बैठना असत्य है। जिस

क्षण वह इसका परित्याग करता है, उसी क्षण से सत् का संग आरम्भ हो जाता है। उसके लिए सत्संग प्रारम्भ होता है। केवल ऐसे ही व्यक्ति के लिए गुरु-भक्ति सम्भव है।

संक्षेप में सत्संग का सार है अपने अहं का त्याग और सत् के साथ संग प्रारम्भ करना-सत् जो हमारे अपने अन्दर है और बाह्य जगत् में सद्गुरु तथा सन्त के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सभी सन्त परम सत् के साकार रूप हैं। अतः दिव्य जीवन यापन करने के लिए मनुष्य को अपने अहं को मारना होगा। अपने लघु अहं का, क्षुद्र अहं का त्याग ही सत्संग के फलदायी होने की कुंजी है। युधिष्ठिर में यह त्याग था, राधा में यह त्याग था, और ईसा के शिष्यों में भी यह त्याग था; किन्तु जिनमें यह त्याग नहीं है, वे भले ही इन अवतारी पुरुषों के साथ रहें, उन्हें इससे किसी फल की प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि वे अपने क्षुद्र अहं की संगति में ही रहते हैं।

-स्वामीचिदानन्द

२. स्वाध्याय की आवश्यकता

प्रश्न यह है कि जब सत्य को एक ही वाक्यांश 'तत्त्वमसि' (तू वही है) में भली-भाँति प्रकट कर दिया गया है, तब आध्यात्मिक विषयों पर अनन्त प्रवचन और श्रवण की तथा साधना के मूलभूत सिद्धान्तों के पठन-पाठन की क्या आवश्यकता है?

केवल एक ब्रह्म-संकल्प ने अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की रचना की। समय आने पर आप पल मात्र में आत्म-साक्षात्कार कर लेंगे और मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। अन्धकारपूर्ण कमरे में रहने की दशा में आप अन्धकार में भटकते रहते हैं और प्रकाश की खोज में प्रायः सतत प्रयत्नशील रहते हैं। कमरे में रखी हुई वस्तुओं से आप टकराते हैं और इधर-उधर ठोकर खा कर आप अपना शिर भी फोड़ लेते हैं। अन्त में जब आप प्रकाश को पाने में सफल हो जाते हैं, तो फिर आपको अन्धकार में भटकना नहीं पड़ता और न कष्ट तथा श्रम ही झेलना पड़ता है। तत्क्षण ही कमरा प्रकाश से जगमगा उठता है। खोज में ही अधिक समय लगता है। आध्यात्मिक साधना में भी तैयारी में ही विशेष समय लगता है।

सतत प्रकाश की आवश्यकता

और यह भी बात है कि जब आपको यह अनुभव हो कि अब आपने सत् को पा लिया है, तब आपको तब तक जागरूक रहना चाहिए जब तक कि वह आपकी चेतना का एक अभिन्न अंग नहीं बन जाता और जब तक आप उस सत् में वास्तविक रूप से निवास करने नहीं लग जाते। जब आप किसी कमरे में दीपक जलाते हैं, तो अन्धकार जाता रहता है; किन्तु यदि आप दीपक बुझा दें, तो अन्धकार पुनः वापस आ जाता है। कमरे को सूर्योदय होने तक प्रकाशित रखने

के लिए उसमें दीप-ज्योति की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है। इसी भाँति आपकी अन्धकारपूर्ण हृदय-गुहा में एक दीप टिमटिमा रहा है–वह है भक्ति अथवा भगवान् की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता के सामान्य ज्ञान का प्रदीप। आपको इससे विषय-वस्तुओं को स्पष्टतः देखने और इस संसार, आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप को जानने के लिए यथेष्ट प्रकाश मिलता है; किन्तु यदि आप अपनी असावधानी अथवा भूल से इस विश्वास में कि मैं अब अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुका हूँ, जान-बूझ कर साधना की उपेक्षा कर इस दीप को बुझा overline 4 , तो आपको अन्धकार पुनः घेर लेगा। जब तक आपके अन्तःकरण में आत्म-साक्षात्कार-रूपी सूर्य उदित नहीं होता, तब तक आपको इस दीप को प्रज्वलित रखना ही होगा और तब सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश होगा। अन्धकार सदा के लिए पलायन कर जायेगा। प्रकाश आपके स्वरूप का अभिन्न अंग बन जायेगा। अन्धकार आपके निकट फटकने का दुस्साहस भी नहीं करेगा। इसके पूर्व जिस साधना को करने के लिए प्रयास की आवश्यकता पड़ती थी, अब वह स्वाभाविक हो जाती है। भक्ति साधक की साधना है और सन्त का स्वभाव। धार्मिकता साधक की साधना है और सन्त का स्वभाव। अतः सत्संग और स्वाध्याय-जैसे विषयों का कभी भी परित्याग नहीं किया जाता। साधक भगवान् की जिन अलौकिक लीलाओं का श्रवण और पठन अपनी साधना का आवश्यक अंग मान कर करता है, उन लीलाओं को सिद्ध पुरुष भी बड़ी रुचि से सुनते हैं; क्योंकि भगवान् की लीला सुनने में उनकी सहज प्रीति होती है।

मन में अपने आदर्श को बनाये रखने के लिए धर्मग्रन्थों का नित्य स्वाध्याय आवश्यक

यदि साधक एक क्षण के लिए भी अपनी सतर्कता को शिथिल कर देता है और आध्यात्मिक अथवा नैतिक निद्रा में निमग्न हो जाता है, तब निम्न प्रकृति पुनः अपना प्रभाव दिखाती है और तत्काल ही उसकी निष्ठा उच्च प्रकृति से हट कर निम्न प्रकृति के प्रति हो जाती है और यदि दुर्भाग्यवश ऐसे समय में कहीं वह विषय-पदार्थों के सम्पर्क में आया, तो उसके आध्यात्मिक जीवन का अधःपतन हो जाता है। अतः ऐसे विषम समय में सतर्कता और आध्यात्मिक जागरूकता को बनाये रखने की अपरिहार्य आवश्यकता रहती है।

इस प्रकार जागरूकता बनाये रखने का एक प्रशस्त मार्ग है स्वाध्याय। अपने मन के समक्ष आदर्श को जीवन्त रखने के लिए सद्ग्रन्थों तथा सन्तों के जीवन-चरित्र का नित्यप्रति स्वाध्याय एक सबल उपाय है; क्योंकि सन्तों का जीवन-चरित्र तथा सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करते समय मन में शक्तिशाली विधेयक विचारों का समुदय होता है और मानसिक शक्ति तत्काल तीव्र होती है। वे विचार मनुष्य को प्रेरणा प्रदान करते, उसे उन्नत बनाते तथा दिन-प्रतिदिन के जीवन की निम्न वृत्तियों पर विजय पाने में उसे समर्थ बनाते हैं। अतः साधक को अपने जीवन में एक दिन भी स्वाध्याय का परित्याग नहीं करना चाहिए।

सदा विद्यार्थी बने रहो

सच्चा साधक आध्यात्मिक विकास के किसी भी स्तर पर क्यों न हो, उसे सत्य का प्रतिपादन करने वाले ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा भगवान् की लीलाओं का श्रवण कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए। क्या आप जन्मजात मुनि तथा परिव्राजक शुकदेव जी से अधिक उन्नत हैं? क्या आप उन महर्षियों से अधिक उन्नत हैं जो शुक से श्रीमद्भागवत की कथा सुनने के लिए नैमिषारण्य

में एकत्रित हुए थे? इन महात्माओं के प्रोज्ज्वल आदर्शों से शिक्षा ग्रहण कीजिए। सदा साधक बने रहिए, अध्यात्म-ज्ञान के पिपासु बने रहिए। सदा विद्यार्थी बने रहिए। केवल वही व्यक्ति वृद्ध है, जो समझता है कि उसने पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है और अब अधिक ज्ञान प्राप्त करने की उसे आवश्यकता नहीं रही। वह व्यक्ति जीते-जी ही मरे के समान है जिसमें भगवान् की लीला तथा आध्यात्मिक प्रवचन सुनने की तीव्र लालसा न हो। यद्यपि अनादि काल से लक्ष-लक्ष ऋषि-मुनि और योगी जन उस परम सत्य का वर्णन करते चले आ रहे हैं, फिर भी वह अक्षुण्ण ही बना हुआ है और यदि आप उस सत्य के विषय में और अधिक जानने, और अधिक अभ्यास करने तथा और अधिक गम्भीर अनुभूति प्राप्त करने के लिए अपने नवोत्साह और उत्कण्ठा को बनाये रख सके, तो आप न केवल अपनी वृद्धावस्था को ही वरन् मृत्यु को भी दूर भगा सकते हैं।

स्वाध्याय द्वारा स्खलन से बचाव

इसके साथ ही यह भी स्मरण रखिए कि आपके चारों ओर भौतिकता का वातावरण छाया हुआ है। यदि आप केवल एक दिन भी शिथिल रहते हैं, तो आपके चतुर्दिक् फैली हुई आसुरी शक्तियों को एक सुअवसर मिल जाता है और वे उपद्रव करना आरम्भ कर देती हैं। सीढ़ी के ऊपरी सिरे से यदि आप गेंद नीचे की ओर लुढ़कायें, तो वह पल मात्र में भूमि तक पहुँच जाती है; किन्तु उसी गेंद को यदि ऊपर ले जाना हो, तो कितना समय लगाना पड़ेगा ! एक क्षण की लापरवाही से बहुत अधिक हानि हो सकती है। जीवन अल्प है, समय तेजी से भागा जा रहा है। शैतान, माया, मार अथवा दुष्ट मन-जैसे दुर्द्धर्ष शत्रु से संग्राम में इतने अधिक प्रयास से आपने जो स्थान उसके हाथों से लिया है, उसे एक इंच भी छोड़ना ठीक न होगा।

सत्संग और स्वाध्याय-उभय रक्षक

अपने काम के साथ-ही-साथ जप, ध्यान, स्वाध्याय, सद्विचार और सद्व्यवहार करते रहिए। बन्दर के समान चंचल मन को एक क्षण के लिए भी विश्राम न दें। ऐसी अवस्था में सत्संग और आध्यात्मिक ग्रन्थ आपकी बड़ी सहायता करते हैं। वे आपके रक्षक हैं। इन सद्ग्रन्थों से कितने सुन्दर विचार आपके पास तक पहुँचते हैं। धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय बड़ी सावधानी से कीजिए। उनकी जिन पंक्तियों का आपके जीवन से सीधा सम्बन्ध हो, उन्हें रेखांकित करते जाइए। अवकाश के समय उनका मनन कीजिए। इस भाँति आप देखेंगे कि आप कितनी ही बाधाओं को पार कर चुके हैं और कितने ही पतन के गर्त लंघन कर चुके हैं। क्या आपका मन उन पंक्तियों को बार-बार पढ़ना नहीं चाहता? आपको मोह-निद्रा में रखने के लिए माया का यही सशक्त अस्त्र है। सावधान ! क्या आप पुनः पुनः एक ही प्रकार का भोजन नहीं करते ? वे आध्यात्मिक वाक्य आपके हृदय-पटल पर जब तक अमिट रूप से अंकित नहीं हो जाते, जब तक वे आपके स्वभाव के अभिन्न अंग नहीं बन जाते, तब तक उन वाक्यों की बार-बार पुनरावृत्ति करते रहिए।

पुनरावृत्ति से अन्तःशक्ति की संवृद्धि

इससे आपके भीतर निरोध-संस्कार का दुर्ग निर्मित होगा। पुनरावृत्ति से बल मिलता है। पुनरावृत्ति से विचार आपके हृदय तथा मन के अन्तरतम प्रकोष्ठ में प्रवेश कर जाते हैं। वे विचार

आपके अवचेतन मन में एक-एक कर एकत्रित होते रहते हैं। कुविचारों का मूलोच्छेदन तथा विनाश हो जायेगा। आपको पता भी नहीं चलेगा कि आपके अन्दर क्या आश्चर्यजनक परिवर्तन घटित हुआ है। एक ही आध्यात्मिक विषय को बार-बार पढ़ने का ऐसा ही शुभकारी प्रभाव होता है। इसी कारण हमारे पूर्वजों ने गीता, रामायण, भागवत आदि ग्रन्थों को निष्ठा और आस्था के साथ नित्यप्रति पढ़ने पर इतना बल दिया है। इनसे आपकी अन्तःशक्ति की संवृद्धि होगी। आपका संकल्प बलवान् होगा। इस भाँति जब आपकी प्रकृति पूर्णतः रूपान्तरित हो जायेगी, तो ध्यान के एक ही प्रयास से आप निर्विकल्प समाधि अथवा अतिचैतन्यावस्था को प्राप्त होंगे। आप एक पल में भगवत्-साक्षात्कार कर लेंगे।

-स्वामी चिदानन्द

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

८ सितम्बर, १८८७ को सन्त अप्पय्य दीक्षितार तथा अन्य अनेक ख्याति-प्राप्त विद्वानों के सुप्रसिद्ध परिवार में जन्म लेने वाले श्री स्वामी शिवानन्द जी में वेदान्त के अध्ययन एवं अभ्यास के लिए समर्पित जीवन जीने की तो स्वाभाविक एवं जन्मजात प्रवृत्ति थी ही, इसके साथ-साथ सबकी सेवा करने की उत्कण्ठा तथा समस्त मानव-जाति से एकत्व की भावना उनमें सहजात ही थी।

सेवा के प्रति तीव्र रुचि ने उन्हें चिकित्सा के क्षेत्र की ओर उन्मुख कर दिया और जहाँ उनकी सेवा की सर्वाधिक आवश्यकता थी, उस ओर शीघ्र ही वे अभिमुख हो गये। मलाया ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। इससे पूर्व वह एक स्वास्थ्य-सम्बन्धी पत्रिका का सम्पादन कर रहे थे, जिसमें स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्याओं पर विस्तृत रूप से लिखा करते थे। उन्होंने पाया कि लोगों को सही जानकारी की अत्यधिक आवश्यकता है, अतः सही जानकारी देना उनका लक्ष्य ही बन गया।

यह एक दैवी विधान एवं मानव जाति पर भगवान् की कृपा ही थी कि देह-मन के इस चिकित्सक ने अपनी जीविका का त्याग करके, मानव की आत्मा के उपचारक होने के लिए त्यागमय जीवन को अपना लिया। १९२४ में वह ऋषिकेश में बस गये, यहाँ कठोर तपस्या की और एक महान् योगी, सन्त, मनीषी एवं जीवन्मुक्त महात्मा के रूप में उद्भासित हुए।

१९३२ में स्वामी शिवानन्द जी ने 'शिवानन्द आश्रम' की स्थापना की; १९३६ में 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी' का जन्म हुआ; १९४८ में 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी' का शुभारम्भ किया। लोगों को योग और वेदान्त में प्रशिक्षित करना तथा आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार करना इनका लक्ष्य था। १९५० में स्वामी जी ने भारत और लंका का द्रुत-भ्रमण किया। १९५३ में स्वामी जी ने 'वर्ल्ड पार्लियामेंट ऑफ रिलीजन्स' (विश्व धर्म सम्मेलन) आयोजित किया। स्वामी जी ३०० से अधिक ग्रन्थों के रचयिता हैं तथा समस्त विश्व में विभिन्न धर्मों, जातियों और मतों के लोग उनके

शिष्य हैं। स्वामी जी की कृतियों का अध्ययन करना परम ज्ञान के स्रोत का पान करना है। १४ जुलाई, १९६३ को स्वामी जी महासमाधि में लीन हो गये।

A DIVINE LIFE SOCIETY PUBLICATION HS 289 60/-